THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180557
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/H32T Accession No. G.H. 2492

Author [illegible]

Title [illegible] 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

टूटते बंधन

टूटते बन्धन

[ग्रामीण-जीवन पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास]

हर्षनाथ

ऊषा प्रकाशन

कलकत्ता

प्रकाशक : ऊषा प्रकाशन,
३५, मछुआ बाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

मुद्रक : साहित्य प्रेस,
८४ सी, लोअर चितपुर रोड
कलकत्ता-७

आवरण चित्रकार : देवव्रत मुखोपाध्याय

Checked 1969

मूल्य : तीन रुपये

प्रथम संस्करण : फरवरी १९५६

कापी राइट लेखक द्वारा सुरक्षित

प्रकाशकीय

टूटते बन्धन में लेखक ने निम्नतर ग्रामीण जीवन के उपेक्षित वर्ग का सजीव एवं यथार्थवादी चित्रण किया है। हिन्दी-साहित्य में ग्रामीण जीवन के बारे में अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण जीवन के शोषित-शापित वर्ग के सुख-दुख, कशमकश एवं चेतना का सफल चित्रण किया है। स्थानीय शब्दों के व्यवहार, लोक-गीतों की चर्चा, एवं प्रकृति वर्णन से लेखक की रचना में ग्रामीण जीवन का खाका उभर कर सामने आया है।

हमें विश्वास है कि लेखक की इस कृति का समुचित आदर होगा।

गोर्की और प्रेमचन्द की परम्परा को

१

जेठ का सूरज तप रहा था। लू और धूप से घबरा कर छाया जैसे बरगद की घनी पत्तियों के आश्रय में विश्राम कर रही हो। जैसे दो घड़ी वह इस विशाल बट वृक्ष के तले काट देना चाहती हो, फिर जरा दोपहरी ढले तो वह अपने पांव फैलाये।

बरगद की लम्बी-लम्बी डालें जैसे आततायी जेठ के शासन के खिलाफ युद्ध का ऐलान कर रही

हों। धरती जैसे अपने हृदय का रस इस बरगद के रूप में ढाल रही हो कि उसकी शीतल छाया में प्राणी जेठ की दाहकता से त्राण पा सकें।

किन्तु आज बरगद की शीतल छाया जैसे उत्तेजित और क्रुद्ध, घृणा और तिरस्कार से भरी मानव-श्वासों से संत्रस्त हो उठी हो। आज जैसे उसका स्वाभाविक रूप न रह गया हो।

जमीन साफ कर उस पर पंचायती का टाट बिछा दिया गया था। पंच लोग उस पर बैठे हुए चिलम पर चिलम फूँक रहे थे। उनके हुक्के की गुड़गुड़ाहट और तम्बाकू के धुएँ से वातावरण जैसे और भी बोझिल हो उठा हो।

पंचों से थोड़ा हट कर, एक तरफ बिरादरी के लोग सहमे-सिकुड़े बैठे थे। उनके मुँह पर जैसे पंचो का भय ग़ालिब हो। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वातावरण एकदम गम्भीर हो उठा था। सभी लोग सन्नाटे में थे; जैसे उनकी अन्तश्चेतना किसी भयंकर विस्फोट की कल्पना से संत्रस्त हो उठी हो।

बिरादरी के चौधरी दलथम्भन भगत ने हुक्के का कश पूरे जोर से खींचा। चिलम पर रखी हुई आग की एक हल्की सी लपट ऊपर उठ गई। अपने मुँह से धुएँ का गाला उन्होंने छोड़ा। उनकी घनी मूँछों में मट-मैला धुआँ एक क्षण के लिये जैसे लिपट गया हो, फिर वह धुआँ लम्बी लम्बी रेखाओं में फैल कर ऊँचा उठने लगा जैसे काला सर्प ईख की सूखी पत्तियों के ढेर से बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहा हो। चौधरी की गोल-गोल बड़ी-बड़ी आँखें कुछ और भी सुर्ख हो गईं। अपनी मूँछों पर

उन्होंने दर्प-पूर्वक ताव दिया और कड़क कर बोले—

"कौन ऐसा जन्मा है जो दलथम्भन के जिन्दा रहते पंचायत के फैसले के खिलाफ जा सकता है! बोल रूपा, मंजूर करता है कि नहीं बारहों गाँव की बिरादरी को भोज और दो सौ रुपये पंचायती-फण्ड में जुर्माना!" फिर जैसे मन ही मन कुड़बुड़ा कर बोले—"किसी की मेहर को मुफ्त में रख लेगा!"

यह कह कर क्रुद्ध बनैले सूअर की सी सुर्ख आँखों से उन्होंने रूपा की ओर घूर कर देखा।

रूपा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह गुमसुम बैठा रहा। उसके चेहरे पर क्रोध था, उत्तेजना थी, और मजबूरी की बेबसी थी जैसे नये बछड़े को पेड़ से बाँध कर कोई पहली बार उसकी नाक में नथ डाल रहा हो और वह फुंफकारता हो, उछलता-कूदता हो, सींगें मारता हो और बन्धनमुक्त होने के लिये झटके दे रहा हो; फिर भी उसकी देह पेड़ से रस्सी से कस कर बँधी हो और नाथने वाला हाथ में सूआ लिये उसके नथनों में घुसेड़ रहा हो।

अपनी बात का जवाब न पाकर चौधरी दलथम्भन को अपमान का बोध हुआ। गुस्से में उनके तेवर और भी चढ़ गये। बोले—

"अभी तुम्हें पता चल जाता है कि बिरादरी किसे कहते हैं! पर एक मौका तुम्हें और देता हूं। बोल, मंजूर करता है बारहों गाँव की बिरादरी का भोज और पंचायती-फण्ड के लिये दो सौ रुपये जुर्माना!"

रूपा ने तीव्र किन्तु धीमी आवाज में कहा—"इतना दण्ड मुझे किस

लिये दिया जा रहा है, मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ। दूसरी औरत मैंने जरूर रख ली है, पर उसके मर्द ने उसे छोड़ दिया था। बहुत होगा उसके मर्द को बाइस रुपये बयेसी के दे दूँगा जैसा कि हमारी बिरादरी का कायदा है। पर यह बारहों गांव की बिरादरी को भोज और दो सौ रुपये पंचायती के लिये जुर्माना किसलिये! मैंने कोई नई बात तो की नहीं है!"

रूपा का स्वर यद्यपि धीमा था; किन्तु उसकी बातों में एक दृढ़ता थी। उसके कहने का ढंग ऐसा था जैसे पिंजरे में कैद सिंह अपनी गुर्राहट से घोर विरोध प्रकट कर रहा हो।

रूपा की बातें सुनकर बिरादरी के बूढ़े लोगों में एक तरह का भय छा गया। चौधरी की बात का यह छोकरा विरोध करता है! अब तो चौधरी जुर्माना और भी बढ़ा देंगे!

उनके चेहरे पर करुणा की स्निग्धता छा गई मानों रूपा को दिये जाने वाले सम्भावित दण्ड की कल्पना से उनका मन उसके प्रति दयार्द्र हो उठा हो। फिर भी उनकी भौंहें कुछ कुंचित थी मानो रूपा की चौधरी के प्रति की गई अवहेलना का विरोध कर रही हों।

दलथम्भन—"तेरे ऐसे छोकरों को मुंह लगाना और उनकी बेसिर पैर की बातों का जवाब देना मेरी आदत के खिलाफ है। तुम्हारे बारे में जो फैसला करना था, वह हो चुका और अगर उसे तू नहीं मानेगा, तो तुझसे मनवाने की ताकत अभी मुझमें है। पंचायती के फैसले ऐसे नहीं कि जिसकी मर्जी हो माने, जिसकी मर्जी हो न माने। इस बात

को अच्छी तरह समझ रखना।"

यह कह कर वह जैसे क्रोध में उबल पड़े। हुक्के की कश उन्होंने इतने जोर से खींची कि लगा उस गुड़गुड़ाहट से वह नारियल का हुक्का तड़ाक से चनक जायेगा। चौधरी की मुखाकृति भट्ठे से निकली गर्म ईंट सी हो रही थी। अपनी ही ज्वाला से वे झुलसे जा रहे थे।

चौधरी का यह रूप देख कर बिरादरी के बड़े-बूढ़े घबरा गये। उन्होंने अपनी आँखों देखा था कि जब-जब चौधरी इस रूप में भभक उठे हैं, तब तब खैर नहीं। कितनी ही बार वह पँचलतिया[1] का हुक्म देकर अपराधी का कचूमर निकलवा चुके हैं। उसकी उल्टी मुश्क चढ़वा कर उसकी छाती पर सिल या चक्की रखवा दिये हैं और अपराधी की जान अब-तब में हो जाती रही है। बिरादरी का चौधरी कोई साधारण आदमी तो है नहीं!

वातावरण जैसे और भी आतंकमय हो उठा। उपस्थित सभी लोग अपनी सांसें खींचे भयभीत से पड़े रहे, भीड़ के ऊपर गोली चलाने का आदेश जैसे पुलिस को अधिकारी ने दे दिया हो। सिपाही अपनी अपनी बन्दूकों का घोड़ा दबाने ही जा रहे हों और भागने की जगह न पाकर भीड़ जैसे संत्रस्त भयातुर हो उठी हो।

इसी बरगद की छाया में अन्य दिनों दोपहर होते न होते जैसे एक भरा-पूरा परिवार जुट जाता। एक तरफ बड़े-बूढ़े बैठे हुक्के गुड़गुड़ाते रहते, हुक्के की धीमी गुड़गुड़ाहट में जैसे वे अपने बीते जीवन की धड़कन

१—हर एक उपस्थित व्यक्ति द्वारा अपराधी पर पांच-पांच लात का प्रहार।

सुन रहे हों, जैसे उनका अतीत उनके सामने उभर रहा हो और तम्बाकू के मटमैले धुएँ में उनकी मद्धिम ज्योति की आंखें अपने बीते जीवन की कहानी देख रही हों। कभी कभी खांसी से उनका दम फूल उठता। खांसते-खांसते उनके गले की नसें तन जातीं जैसे रस्सी पर कोई लगातार ऐंठन चढ़ा रहा हो और बल खाती हुई वह ऐंठ रही हो।

कहीं अपनी अँगोंछियों को जमीन पर डाले प्रौढ़ लेटे रहते। दोपहर तक की कड़ी मेहनत से चूर उनका शरीर बरगद की शीतल छाया में तृप्त हो उठता। घड़ी आध-घड़ी विश्राम करके वे फिर ताजगी अनुभव करने लगते और अपने काम में जुट जाते।

बड़े-बूढ़ों और प्रौढ़ों से हट कर नवजवान एक किनारे बैठे मीठी-मीठी बातें करते रहते। उनके होठों की मुस्कराहट और आंखों की मादकता जैसे उनके अन्तर का रस उड़ेल रही हो। उनके पास ही छोटे-छोटे बच्चे उछलते-कूदते और धमा-चौकड़ी मचाते रहते। कहीं किशोर गोली और कौड़ियां खेलते रहते।

एक तरफ गाय, भैंसें और बैल खड़े-बैठे पागुर करते रहते। उस शीतल छाया में जैसे वे तृप्त हो उठते हों। वे अपनी आँखों को बन्द करके लेट जाते। उनकी गर्दन के लोलों[१] से, उनके सींगों की जड़ों से, उनके कानों से, उनकी जांघों के पास से कौवे अपनी चोंचों से अंठवे[२] और किलनी[3] निकाल कर खाते जाते। उस समय पशुओं और पक्षियों का यह मिलन बड़ा ही मनोहारी लगता। ऊपर बरगद की घनी

१ ललरी। २, ३ एक प्रकार का कीड़ा।

पत्तियों में छिपे नाना प्रकार के पक्षी चहकते रहते। हरे पत्तों के बीच अनार के बड़े दाने की तरह चमकते बरगद के लाल लाल गोदों[1] को खाते। कभी मौज में आकर अपनी चोंच के झटके से उन्हें अनायास ही जमीन पर गिरा देते और तब छोटे बच्चे दौड़ कर उन गोदों को उठा कर खा जाते। पोस्ते के दाने सा छोटा बीज चखते और वह उन्हें अमृत फल-सा लगता। कितना अनोखा स्वाद होता है पीपल, पाकड़ और बरगद के गोदे का!

किन्तु आज तो जैसे सारा वातावरण बदला हुआ था। न तो बूढ़ों की बतरस थी, न प्रौढ़ों का विश्राम, और न तो नवजवानों का मधुर आलाप, न बछड़ों की उछल कूद और खिलवाड़ और न चौपायों-पक्षियों की दोस्ती का नज़ारा।

आज तो बिरादरी का टाट बिछा कर पंच लोग और बिरादरी बैठी हुई थी। एक तरफ बड़े बड़े हंडे, जमीन खोद कर तैयार किये चूल्हे पर चढ़े थे। पंचों के लिए उनमें खाना पक रहा था। एक तरफ कुछ कंडे सुलग रहे थे। उसी के पास तम्बाकू की काली पिंडी रखी थी और पांच-सात चिलमें पड़ी थीं। हर वक्त दो एक आदमी तम्बाकू चढ़ाते ही रहते थे। चिमटे से आग निकाल कर उसकी राख साफ करते थे और फिर चिलम पर तम्बाकू भर कर आग रख लेते थे।

चढ़े हुए चूल्हे के पास कुछ कुत्ते ललचाई आंखों से खड़े थे। उनकी पूंछें अनवरत हिल रही थीं मानो वे इस आशा में हों कि अभी जब बिरा-

---

१ बरगद का फल।

दरी की पांत बैठेगी तब उसकी जूठनों से आज निहाल हो जायेंगे! किन्तु जब खाना पकाने वाला उन्हें दुतकार देता था, तब क्षण भर के लिए वे सहम जाते थे। फिर जैसे खुशामद के स्वर में उनकी पूंछें और भी जोर से हिलने लगती थीं।

चौधरी दलथम्भन ने क्षण भर तक उपस्थित लोगों पर अपनी नज़रें घुमाईं जैसे वातावरण का अध्ययन कर लेना चाहते हों। और फिर आवेश में गरज कर बोले—

"चढ़ा दो इसकी मुश्कें और चक्की रख दो इसकी छाती पर!"

卐

२

गोपी जल्दी जल्दी ईख गोड़ रहा था। खेत में अभी दो दिन ही पहले पानी दिया था, किन्तु जेठ की प्रचंड धूप से दो दिन में ही क्यारी उठ गयी थी। कुदाल चलाते समय मिट्टी भस भस कर रही थी। एक एक हाथ ऊँचे ईख के पौधे, तपती धूप में पानी पाकर जैसे निहाल हो गये थे। उनकी हरियाली गाढ़ी होकर कुछ काली हो गयी थी। हवा के झोंके से लहराते हुये वे बड़े भले लग रहे थे। उनकी पत्तियां इस तरह हिल रही थीं; जैसे किसी बच्चे के काले घुंघराले बाल हवा के हल्के झकोरे से हिल रहे हों। ईख की पत्तियों के कटाव से गोपी का पैर ठेहुने तक खरोंचों से भर उठा था। परन्तु गोपी का ध्यान इधर नहीं था। खेती-गृहस्थी का काम करते हुए ऐसी खरोंचें किसानों-मजदूरों को लगती ही हैं; जैसे अबोध बच्चा मां का स्तन पीते हुये कभी-कभी

नख से अपनी मां की छाती कुरेद देता है और तब मां का हृदय और भी स्नेह और वात्सल्य से भर उठता है। वह स्नेह से शिशु का मुंह चूम लेती है और उसे अपने सीने से सटा लेती है। कुछ इसी तरहका भाव किसानों के हृदय में ऐसे समय उठ जाता है। फसल जैसे उनकी मानस संतान हो और उसके सानिध्य से वे निहाल हो जाते हों।

गोपी जल्दी जल्दी ईख गोड़ना जा रहा था; ताकि वह पहर डेढ़-पहर दिन चढ़ने के पहले ही गाड़ना खतम कर दे। उसका मन गांव में अटका हुआ था। रात से ही गांव में पंच लोग आ गये थे। इस बात को लेकर बिरादरी और बड़े बूढ़ों में काफी खलबली थी कि रूपा ने दुआह औरत रख ली; किन्तु बिरादरी को भोज नहीं दिया। जिसकी औरत रखी उसे बयेसी भी नहीं दी और खुलेआम उसके साथी कहते फिरते हैं कि हर काम में बिरादरी को टांग अड़ाने का कोई हक नहीं है।

रूपा का मन कुछ डिग रहा था, किन्तु गोपी ने उसे कड़ा किया था—

"बड़े-बूढ़ों की बात जाने दो। उनका अपमान हम नहीं करते; किन्तु यह नहीं हो सकता कि हम लोगों का कोई हक ही न रहे और शादी-ब्याह आदि हर चीज में उन्हीं की बात की प्रधानता रहे।"

गोपी के साथ उसके और भी दो चार नवजवान साथी थे। इस तरह इन सब लोगों ने मिल कर रूपा को दिलासा दिया था—"तुमने औरत तब रखी है जब उसके मर्द ने उसे निकाल दिया और उसने खुद दूसरी मेहर रख ली है। तिस पर तुमने यह काम कोई चोरी-छिपे

तो किया नहीं। तुम्हीं क्या, हमारी बिरादरी में तो ऐसा होना ही रहना है। मियां बीबी राजी तो क्या करेगा क़ाजी। किन्तु अभी तक यही होता रहा है कि शादी-व्याह करे कोई दूसरा और जुर्माने के रूप में भोज, दावत, नगद रुपये आदि वसूल करे पंचायत। किन्तु अब हम यह नहीं चलने देंगे।"

गोपी तथा उसके साथियों की सलाह से तय हुआ था कि बिरादरी और पंचायत वाले चाहे जो भी कहें, इस तरह अकारण हम उन्हें जुरमाना नहीं देंगे। बिरादरी का यह रवैया हमें बदलना पड़ेगा। अब यह नहीं हो सकता कि वे हमें पीस कर रख दें। बात बात में पुरानी परिपाटी के निर्वाह के नाम पर लोगों को बरबाद कर दें।

पंचायत दरअसल रात के एक पहर के बाद से बैठने वाली थी, परन्तु जब सभी पंच इकट्ठे हो गये तो फिर और इन्तजार करना उन्हें अपना अपमान महसूस हुआ। गापी जब सबेरे ईख गोड़ने चला था तभी रूपा ने उससे कहा था—

"तुम उधर ईख गोड़ने चले और मैं अकेला रह जाऊँगा। बिना तुम्हारे रहे और साथी कुछ नहीं कर पायेंगे।"

गोपी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा था—"घबराओ नहीं, मैं पहर डेढ़-पहर दिन चढ़ते तक आ जाऊँगा। खेत उखड़ गया तो फिर से पानी देना पड़ेगा और तुम देख रहे हो कि कुंआ मिलना मुहाल हो रहा है। पांच बिस्वा ही तो खेत है। साथ में एक और जोड़ीदार का इन्तजाम कर रखा है। बस, पहर भर दिन चढ़ते न चढ़ते मैं आ जाऊँगा। पंचायत

तो कहीं दोपहर के बाद बैठेगी और हां, परताप और चेखुर वगैरह को खबर कर देना।"

किन्तु जब गोपी खेत पर पहुँचा तो उसका जोड़ीदार नहीं आया था। पाँच बिस्वा क्यारी अकेले गोपी को गोड़नी पड़ी। अपनी पूरी ताकत से वह कुदाल चलाये जा रहा था। उसके साँवले बदन पर से पसीने की बूँदें ढुलक ढुलक कर उसके रोओं में उलझ उलझ जाती थीं और बूँदों की शक्ल में नीचे गिर पड़ती थीं। कभी वे बूँदें ईख की पत्तियों पर टप से चू पड़ती थीं और कभी भुरभुरी मिट्टी पर। उसके साँवले शरीर पर ढुलकती हुई पसीने की बड़ी बड़ी बूँदें ऐसी मालूम पड़ती थीं जैसे श्यामल पत्थर के गढ़े शिव-लिंग के ऊपर भक्तों द्वारा चढ़ाया हुआ जल बूँद-बूँद ढुलक रहा हो।

डेढ़ पहर दिन चढ़ गया था जब गोपी ने सारा खेत गोड़ लिया। कुदाल को कन्धे पर रखे लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह गांव की ओर बढ़ रहा था। गाँव के एक किनारे बीस-पचीस घरों की चमटोल थी। सिवान से ही उसे बरगद का पेड़ दिखाई दिया। उसके नीचे आदमियों की हलचल भी स्पष्ट मालूम हुई। फूस की छायी हुई झोपड़ियाँ और घर मटमैले मालूम हो रहे थे।

गर्म हवा तेज होती जा रही थी। धूल का बवंडर उठ रहा था। ऊपर सूरज तप रहा था और नीचे धरती तवा जैसी गर्म हो रही थी। गोपी के मस्तिष्क में भी जैसे तूफान उठ रहा था।

तेजी से वह डग उठा रहा था। जैसे जैसे गांव नजदीक आता जा

रहा था, उसके पैर और भी तेजी से उठते जा रहे थे। उसके मन में रूपा की सूरत नाच रही थी। जाने उस बेचारे पर इस समय क्या गुजर रही होगी! पंचायत वाले जाने उसे क्या दंड दे बैठे होंगे! मालूम होता है कि पंचायत बैठ गयी है। तभी तो बरगद के तले इतने आदमी नजर आ रहे हैं, पर अभी पंचायत बैठी कैसे होगी? इस समय तक तो सब लोग आये भी नहीं होंगे और वैसे भी पंचायत सदा पहर भर रात गये ही बैठती है। बहुत होता है तो दोपहर के समय भी पंचायत बैठ जाती है। इतने सवेरे तो पंचायत बैठी ही नहीं होगी।

मन ही मन वह संकल्प-विकल्प कर रहा था और विचारों की उत्तेजना से जैसे उसके पैर और भी तेजी से उठ रहे थे। गोपी बरगद के पास पहुँच गया। कन्धे पर कुदाली रखे वह पंचों के करीब आकर खड़ा हो गया। गन्ने की पत्तियों से खरोंचें लगे उसके सांवले पैरों और हाथों में कहीं कहीं खून की लाल निशानी साफ झलक रही थी, जैसे काले खम्भे पर लाल-लाल लकीरें खिंची हों। पैरों में धूल भरी थी। माथे पर पसीने की बूंदे चुचा रही थीं। कन्धे पर पड़ी कुदाली की धार पर मिट्टी और बालू के कण चिपके हुए थे जो दूर से ऐसे चमक रहे थे जैसे हल्के बादामी रंग की साड़ी पर अबरक के छींटे पड़े हों या छूरे पर शान धरते समय चिनगारियां चमक रही हों।

गोपी ने देखा कि चौधरी दलथम्भन की सुर्ख आँखें चढ़ी हुई हैं, उनका हाथ बार-बार अपनी मूंछों पर ताव दे रहा है। बीच बीच में क्रोध से दांत पीस लेते हैं और रह रह हुक्के का कश इतने जोर से खींच

लेते हैं जैसे उनके अन्तर का वेग संभाले न सँभल रहा हो।

बिरादरी के अन्य सभी उपस्थित व्यक्ति दम साधे हैं। उनके मुंह पर आतंक और भय छाया हुआ है जैसे अभी अभी आकाश में बिजली भयानक कड़कड़ाहट के साथ कौंध गई हो और उसकी कड़क अब भी लोगों के कानों में गूंज रही हो।

चौधरी के सामने रूपा पड़ा था। उसकी मुश्कें कसी हुई थीं और उसे चित करके उसकी छाती पर सिल रखी हुई थी।

卐

३

बरगद के सूखे पत्ते हवा के थपेड़े खा खा कर खड़खड़ा रहे थे। कभी हवा के तीखे वेग से वे उड़ते हुए सूखे पत्ते आवर्त के रूप में चक्कर काटने लगते थे जैसे वे अपनी जिन्दगी का सन्तुलन खो बैठे हों और दिशा-ज्ञान रहित निरुद्देश्य भटक रहे हों। लू और बवंडर का तीव्र झोंका कभी कभी बरगद को झकझोर जाता था और बरगद का पेड़ जैसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये प्राण-पण से कटिबद्ध हो जाता हो। उसकी ऊपर-नीचे झुकती डालें जैसे पैंतरा बदल कर अपना दाँव खोज रही हों। बरगद से थोड़ी दूर हट कर चमारों के छप्पर थे। उन पर छाई हुई फूस की पत्तियां तेज हवा के झकोरे से बिखर बिखर जाती थीं; किन्तु मानो छप्पर के रूप में एकजुट होकर उन्होंने अपना मोर्चा कायम कर रखा हो कि आँधी आये, तूफान आये, बवंडर आये, किन्तु हम अपने

अस्तित्व के अन्तिम क्षण तक अपने साये में रहने वाले बाशिन्दों की रक्षा करेंगी, अपना यह जीवन हम उनके लिए कुर्बान कर देंगी, पहले हम खत्म हो लेंगी ; तब हमारे आश्रितों पर किसी तरह की रेप आने पायेगी।

झोपड़ियों से थोड़ा हट कर बरगद की उत्तरी तरफ एक गड़ही थी, उसका पानी सूख गया था। उसमें दरारें पड़ गई थीं मानो स्नेह के अभाव में धरती का हृदय फट गया हो। अपने घरों की मरम्मत करने के लिये, उनको लीपने-पोतने के लिये गड़ही में से बड़े बड़े सूखे चप्पे उखाड़ लिए गये थे। जहां के चप्पे उखाड़े गये थे वहां जगह-जगह छोटे छोटे गड्ढे बन गये थे। तलैया की सफेद मिट्टी में वे छोटे छोटे गड्ढे ऐसे मालूम होते थे जैसे गेहुआँ रंग के शरीर पर फोड़े के सूखे हुए निशान हों। अब भी वहाँ पर जलकुम्भी की सूखी जड़ें और पत्तियाँ पड़ी थीं। उन सूखी पत्तियों को देख कर यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि जब इस तलैया में पानी भरा रहता है उस समय यह जलकुंभी, सेवार और काई अपने हरे अंचल से तलैया का कलेवर इस तरह ढँके रहती है जैसे कोई स्नेहमयी मां आंचल से अपने सुकुमार शिशु का कोमल शरीर ढाँके हो कि किसी की खर नजर उस पर न पड़ जाय। किन्तु आज तो तलैया का हृदय टूक टूक हो गया है जैसे किसी अत्याचारी के शासन ने उसका जीवन-रस सोख लिया हो और निःसत्व मिट्टी शेष बची पड़ी हो, लाश की तरह बेजान।

बरगद के पेड़ के नीचे आदमियों का हुजूम लग जाने से बेचारे

पशु-पक्षी जैसे घबराये-घबराये इधर उधर फिर रहे हों। दो-चार भैंस-गायें अब भी एक तरफ छाया में खड़ी पागुर कर रही थीं। उनके जबड़ों के अनवरत हिलने से कसर कसर का स्वर निकल रहा था और जबड़े की कोरों पर फेन जमा हो रहा था। कभी पागुर करना छोड़ कर आदमियों के उस हुजूम को देख लेती थीं जैसे वे समझना चाहती हों कि हमारे आराम में खलल डालने वाले ये कौन हैं। जैसे वे महसूस कर रही हों कि आज तो जो कुछ है, वह जीवन का नियमित क्रम नहीं है, जिन्दगी को सहारा देने वाला नहीं है, बल्कि जैसे जिन्दगी की बाढ़ पर बन्दिश लगाने वाला हो। अपनी बड़ी बड़ी फटी आँखों से क्षण भर आदमियों की उस भीड़ की ओर ताकती रह जाती थीं, और फिर जैसे आदमियों के इस झमेले मे तटस्थ होकर, विरक्त होकर पागुर करने लग जाती थीं।

कुत्ते भी आज जैसे कुछ खोये खोये से हों, जैसे उनकी समझ में ही नहीं आ रहा हो कि आज क्यों यह सब बावेला मचा हुआ है, क्यों इतने सारे आदमी इकट्ठे होकर इतना शोर-गुल मचा रहे हैं, क्या जरूरत थी इसकी! बेकार ही हमारे आराम में खलल डाल रहे हैं, नहीं तो जमीन पर पड़ कर अपनी टाँगों और अपनी पूँछ इच्छानुसार फैला कर, आँखें बन्द करके लेटे रहने में जो मजा है, वह और कहाँ! कहीं कुछ खटका हुआ, तो बहुत हुआ लेटे ही लेटे जरा सी आँखें खोल उनींदी आँखों से देख लिया कि क्या माजरा है, और फिर आनन्द से सोते पड़े रहे। पर आज तो जैसे इन बदजात आदमियों ने हमारा खाना खराब

कर रखा है। हाँ, इस चूल्हे पर बड़े बड़े हंडे चढ़े हैं, चावल दाल पक रहा है; ये सारे आदमी जब पंगत बांध कर जीम लेंगे तब उनकी जूठनों से इच्छा भोजन मिलेगा। तब आज यह चोला कृतार्थ हो जायेगा। इसी भावना में भरे हुए वे चूल्हे का चक्कर काट रहे थे। फिर भी उनके चेहरे पर जहां जूठी पत्तलों को पाने की खुशी की चमक थी, वहां आराम में खलल पड़ने के कारण अनमनेपन का भाव भी था।

स्तम्भित सा, गोपी खड़ा-खड़ा यह दृश्य देखता रहा। एक तरफ बिरादरी के बड़े बूढ़ों से घिरे चौधरी दलथम्भन, रोब, अकड़ और अधिकार की भावना से बलखाये, क्रोध और दर्प से उन्मत्त और दूसरी ओर उनके सामने रूपा बेबस सा उल्टी मुश्क बंधा और उसकी छाती पर सिल रखी हुई।

किन्तु रूपा की मुखाकृति पर दीनता नहीं थी, भय नहीं था, निराशा नहीं थी, था एक दुर्निवार क्रोध, एक अवहेलना, एक चैलेन्ज देने की दृढ़ भावना।

गोपी के कन्धे पर कुदाली अभी भी पड़ी थी। उसके अगले हिस्से पर भुरभुरी मिट्टी लगी थी उसपर बालू के कण अब भी चमक रहे थे। उसकी आँखें जैसे अंगारे की तरह दहकती जा रही हों, मानो उसके अन्तर की ज्वाला उसकी आँखों के रास्ते बाहर निकलने का प्रयास कर रही हो। उसकी दृढ़ मुखाकृति पर अंगारे की तरह चमकती हुई लाल आँखें. ऐसी मालूम हो रही थीं मानो बनराज सिंह चुनौती पाकर क्रोध से उन्मत्त हो बैठा हो, उसकी आँखों से रोष की ज्वाला फूट पड़ी हो कि जिसकी

तेजाग्नि से वह प्रतिद्वन्दी को जला कर खाक कर देगा। उसकी मुट्ठियों की पकड़ में पड़ा कुदाली की बेंट और भी कसता जा रहा था, उसकी मुट्ठियों का दबाव और भी बढ़ता जा रहा था, उसके श्वासों का वेग और भी तीव्र होता जा रहा था, गर्दन पर की नसें, गर्म रक्त का तीव्र प्रवाह संवाहित करने में जैसे असमर्थ होकर फूलती जा रही थीं, उसकी छाती जैसे श्वासों के प्रवाह से और भी तनती जा रही हो। उसके दोनों पैर जैसे अंगद के पैर की तरह वज्र की तरह दृढ़ होकर धरती को दबाते जा रहे हों। अपने वेग और क्रोध को संभालने में असमर्थ होकर गोपी ने कड़क कर कहा—

"चौधरी!"

घन पर जैसे हथौड़े की चोट पड़े। वायु की स्वर-लहरियाँ जैसे उस तीव्र स्वर से काँप उठीं। चूल्हे के पास चक्कर काटते हुए कुत्ते चौंक गये। उनकी अनवरत हिलती पूँछ एक क्षण के लिए निस्पन्द हो गई। उनकी आँखों में भय समा गया।

बिरादरी के सारे उपस्थित लोग तथा चौधरी जैसे हक्का बक्का हो गये हों, जनवासा-क़दम उठाती द्वार-पूजा के लिये बढ़ती बारात के सामने जैसे बम फूट पड़ा हो।

क्षण भर में जैसे सारी गतिविधि रुक गई हो। किन्तु जैसे ही चौधरी ने अपने को संभाल लिया, उन्हें स्पष्ट बोध हुआ कि अब जैसे कोई विघ्न पड़ेगा ही। फिर भी उन्होंने अपने को सम्हाला और रोष भरी नजरों से गोपी की ओर देखाः कुछ उसी उपेक्षा, अवहेलना और रोष की मुद्रा में,

जैसे भेड़िया मेमने की ओर देखे—"अच्छा, तो तुम्हारी ऐसी जुर्रत कि मुझसे आँखें मिलाने का दुस्साहस करो।"

गोपी अभी भी उसी तरह मुद्रा में था दृढ़, अविचल और गर्वस्फीत भयानक आँधी में शीशम के पेड़ की तरह।

उसी तीव्र स्वर में उसने कहा—"जानते हो इसका नतीजा क्या होगा?"

जितने भी बड़े-बूढ़े बिरादरी के लोग वहां थे, वे सब जैसे सन्नाटे में आ गये—यह कल का छोकरा गोपी इतनी मजाल रखता है कि बारहों गाँव के चौधरी को रे-तुकार करे! इस तरह आँख दिखा कर बातें करे, और उनके पंचायती फैसले पर उंगली उठाये! उनमें से कुछ तो भयभीत हो उठे कि कहीं चौधरी गुस्से में आकर इस गोपी को पँचलतिया का दंड न दे बैठें और फिर तो मारे लातों के इसका कचूमर निकल जायगा। हो सकता है कि अभी इसके पूरे परिवार का हुक्का-पानी, भोज-भात सब बन्द कर दें, इसका बाप बेचारा परमेसर इस बुढ़ापे में सद्गति नहीं पा सकेगा! इस लौंडे का क्या बिगड़ेगा, भोगेगा तो इसका बेचारा बूढ़ा बाप!

चौधरी दलथम्भन अब तक बहुत कुछ संभल गये थे। उन्होंने लापरवाही दिखाते हुए, किन्तु क्रोध पूर्वक कहा—

"छोकरे, अभी तेरा खून गर्म है। तुझमें जमाने का अनुभव नहीं आ पाया है। इसलिए तुम्हारी बदतमीजी पर मैं ध्यान नहीं देता हूँ। पर जरा शऊर-कायदा सीखो। किस तरह चौधरी दलथम्भन से बात की

जाती है, जरा इसकी तमीज रखो।"

फिर जैसे कुछ सोचकर कहा—"किसका छोकरा है यह ?"

परमेसर हाथ बाँधे सामने खड़ा हो गया। गिड़गिड़ा कर बोला—

"चौधरी, माफ कर दो, लड़का नादान है।"

फिर गोपी की ओर मुखातिब होकर बोला—

"गोपिया, तेरी अकल पर पत्थर पड़ गया है क्या! जानता नहीं, किससे बातें कर रहा है। आ, चौधरी के पैरों पर पड़कर माफी मांग।"

परमेसर दीनता की मूर्त्ति बना हुआ था। उसका रोम रोम जैसे चौधरी दलथम्भन से क्षमा याचना कर रहा हो।

किन्तु गोपी ने जैसे यह सब कुछ सुना नहीं। उसी तीव्र स्वर में उसने चौधरी से कहा—

"चौधरी, मैं पूछता हूँ, तुमने अपने इस काम का अंजाम भी सोचा है? शादी-व्याह कोई करे और जुर्माना वसूल करो तुम। आखिर शादी-व्याह के मामले में दखल देने का तुम्हें क्या हक है?"

उपस्थित व्यक्ति जैसे सन्नाटे में आ गये। चौधरी ने अबकी गरज कर कहा—

"छोकरे, देखता हूँ, जितना ही मैं तरह देता जा रहा हूँ, उतना ही तुम शेर बनते जा रहे हो। छोटा मुँह बड़ी बात। अभी इस गुस्ताखी का मज़ा चखाता हूँ तुमको।"

चौधरी का चेहरा इस समय खूँखार भैंसे सा हो गया था, जो क्रोध में उन्मत्त होकर अपनी सुर्ख आँखों से ज्वाला उगल रहा हो, फुफकार

मार रहा हो और अपने प्रतिद्वन्द्वी को न पाकर पेड़ से अपनी सींगों की टक्कर मार रहा हो और अगले दोनों पैरों से जमीन खूँद रहा हो।

अब तक पांच-सात नवजवान गोपी के पास आ खड़े हुए थे, जैसे वे मौन-मूक गोपी को इस बात का विश्वास दिला रहे हों कि हम तुम्हारे साथ हैं, तुम जो भी करोगे उसमें सबसे आगे मुझको पाओगे।

और वे कुछ और खिसक कर गोपी के पास हो गये।

गोपी—"बड़े-बूढ़ों का आदर करना हमें मालूम है, किन्तु जब बड़े-बूढ़े हम लोगों को रौंदेंगे, तब हम लोग उनकी इस हरकत को कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

चौधरी—"इसके मानी ?"

गोपी—"इसके मानी यह कि तुम्हारा और तुम्हारे सड़े समाज की ज्यादती अब आगे जरा भी हम लोग बर्दाश्त नहीं कर सकते। तुम लोगों का जमाना तुम्हारे साथ लद गया। अब हम नवजवान अपनी मर्जी के अनुसार नयी समाज-व्यवस्था लागू करेंगे।

चौधरी—"क्यों, इसमें ज्यादती क्या है ? रूपा ने दूसरे की मेहर रख ली। अब यह समाज का फर्ज है कि रूपा से भोज-भात और जुर्माना वसूल करे। यह कोई आज की नई चलन है नहीं ! यह तो सदा से ही होता आ रहा है और सदा चलता रहेगा। इस तरह की अन्धेरगर्दी हम अपनी बिरादरी में नहीं चलने देंगे कि जिसकी जो मन-मानी हो करे, बिरादरी और समाज की कोई गिनती ही न करे !"

गापी—"अन्धेरगर्दी हम नहीं, आप और बिरादरी के ठेकेदार लोग

कर रहे हैं। माना कि रूपा ने औरत रख ली है। किन्तु यह सभी जानते हैं कि जिस औरत को उसने रखा है, उसके पति ने उसे दो साल से छोड़ दिया है और उसने दूसरी शादी भी कर ली है। फिर रूपा ने वही किया जो हमारी बिरादरी में सभी करते हैं। हमारे यहां इस तरह की शादियां होती रही हैं।"

चौधरी—"यह मैं कब कह रहा हूँ कि हमारे यहां इस तरह की शादियां नहीं होतीं ! किन्तु इस तरह की शादियों में बिरादरी जो दंड वसूल करती है, वह करेगी ही; चाहे जिस तरह से कोई दे। और यह रूपा क्या, इसके मरे हुए सात पुरखे तक इस जुर्माने को देंगे। यह बिरादरी का मामला है कोई बच्चों का नाटक नहीं है !"

गोपी—"पर अब यह नहीं चल सकता। आप लोगों का जमाना लद गया। यह जमाना हम नवजवानों का है। समाज की बागडोर अब हम लोगों के हाथों में रहेगी।"

गोपी के पास खड़े नौवजवानों में से एक ने कहा—

"जरूर, हम यह अब बर्दाश्त नहीं कर सकते कि हमारे शादी-व्याह के मामले में भी पंच और चौधरी लोग दखल दें। हम कोई अनीति-अन्धेर करें, कोई दुर्गुन सीखें, तब बड़े-बूढ़े और बिरादरी-पंच हमारी ताड़ना करें, हमें अच्छे रास्ते दिखलायें पर यह नहीं होगा कि महज अपनी तानाशाही दिखाने के लिए ही हम लोगों को जेर करें।"

दूसरे ने कहा—

"हां, हम इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

बिरादरी के बड़े-बूढ़ों की बूढ़ी और मुलमुली आँखें इन लड़कों की ओर जम गईं। जैसे वे यह आंक रहे हों कि अभी अभी जो बातें वे सुन रहे हैं वह किसी भयावने सपने की बातें तो नहीं है; और नहीं तो कल के पैदा हुए इन छोकरों की ऐसी बिसात कि हमारे मुँह पर ही हमारे खिलाफ वाही तबाही बकें।

चौधरी ने कड़क कर कहा—"तो तुम लोग जो करना चाहते हो, करो। अब तुम्हें मालूम होगा कि चौधरी दलथम्भन किसका नाम है और बिरादरी किसे कहते हैं।"

गोपी ने उसी तरह आत्म-विश्वास युक्त दर्प से कहा—"सो जरूर हम वही करेंगे जो इन्साफ का रास्ता है। हम अपनी तौहीनी अब नहीं होने देंगे।"

बिजली की तेजी से लपक कर उसने रूपा की छाती पर रखे पत्थर को एक ओर झटक दिया। फुर्ती से उसकी मुश्कें खोल दीं।

रूपा उठ कर खड़ा हो गया। नवजवानों ने उसे घेर लिया जैसे फौलादी मूरतें उसकी हिफाजत के लिये मोर्चा बना रही हों।

चौधरी और बिरादरी के सभी लोग जैसे अपने को निःसहाय महसूस कर रहे हों, जैसे वे ईख के खेत हों और मत्त हाथियों का दल उन्हें रौंदने के लिए बढ़ा चला आ रहा हो।

卐

४

गोपी के पास जगह-जमीन और जायदाद के नाम पर केवल चार बीघे जमीन थी। जिनमें से दस बिस्वा तो धनखर था। उसमें धान के सिवा और कुछ नहीं होता था। बाकी जमीन रबी की फसल की थी। उसमें जौ, गेहूँ, चना, ईख आदि सभी जिन्सें उपजती थीं, किन्तु गोपी इस बात के प्रयत्न में रहता था कि ज्यादा फसल वह ईख की ही उगाये, क्योंकि ईख की फसल ऐसी होती है कि अगर समय-सुकाल रहा, ठीक से बीज पड़े, खाद-पानी ठीक से मिल जाय और कोई आफत-विपत नहीं आई, तो दूसरी फसलों के मुकाबले में ज्यादा आमदनी हो जाती है। किसानों के पास और कोई आसरा तो होता नहीं, और न तो साधारण किसानों के पास जगह-जमीन ही ज्यादा होती है कि पैदावार काफी हो सके, तिसमें गोपी तो उन जात वालों में से था, जिनमें हजार में से एक

के पास कुछ थोड़ी-बहुत जगह-जमीन निकल आई तो निकल आई, नहीं तो सभी को अपनी बाहु का बल। काम मिला तो दूसरों के खेतों में बन्नी-मजदूरी की। रोपनी-सोहनी, कटनी वगैरह के समय कुछ काम पा गये; नहीं तो राम-भरोसे ही जिन्दगी कट जाती है। इसीलिये गोपी भी अपने रबी के खेत में से प्रायः दस-पन्द्रह बिस्वे गन्ने बोता था, जिससे गुड़ बेच कर साल भर के कपड़े-लत्ते नमक, तेल, मर-महाजन और लगान वगैरह का काम चला सके।

गन्ने के पौधे हाथ भर से कुछ ज्यादा ऊँचे हो गये थे। जेठ का महीना चल रहा था। अब तक तीन पानी वह खेत में दे चुका था और फिर भी पानी देने की नौबत आ गई थी। जेठ और पछुआ जैसे सारी धरती का रस सोख लेंगे, जैसे उन्हें यह अपना अपमान मालूम हो रहा हो कि सारी धरती पर से तो हमने हरियाली खतम कर दी, अपने पौरुष और दर्प में सभी को भून कर रख दिया, पर यह कम्बख्त गन्ने का पौधा दिन प्रति दिन लहलहाता जा रहा है, दिन प्रति दिन जैसे मेरे शासन को अमान्य कर के प्रगति पथ पर बढ़ता जा रहा है।

किन्तु ईख के पौधे को तो धरती का स्नेह मिल रहा था, किसानों मजदूरों के पसीने का पोषण मिल रहा था और फिर जिसे धरती का सहारा हो, जिसके पांव धरती पर टिके हों,जिसे परिश्रम का बल हो, फिर कौन सी वस्तु उसे दुर्लभ हो सकती है। जिसे धरती का बल मिल गया, जिसे धरतीका पोषण मिल गया,उसका जीवन रस से भर उठेगा। जिन्दगी और धरती का अन्यानोश्रित सम्बन्ध जो है।

कुएं पर गोपी पूर चला रहा था। कुएं के दोनों ओर मिट्टी का ऊंचा ओटा[1] उठा कर उस पर बांस का बंड़ेरा[2] रखा हुआ था और धुरई[3] पड़ी थी। पानी निकल रहा था। जब पूर चलता तो धुरई की चूं चूं की आवाज बड़ी मधुर मालूम होती, उस राग को सुन कर पूर चलाने वाले बैलों की जोड़ी भी जैसे मगन हो जाती हो, जैसे वह स्वर उनमें एक अपूर्व आनन्द भर रहा हो कि उसके आगे जेठ की लू और बवंडर का कोई अस्तित्व ही न रहा गया हो और उस उन्मादक स्वर से उनकी आत्मा तृप्त हो गई हो और मधुर भावना में डूबे हुए मोट खींच रहे हों।

जगत[4] के एक तरफ दो तीन आम और दो कटहल के पेड़ थे। आम के पत्ते हरे होकर गाढ़े हो गये थे। अभी महीना डेढ़ महीना पहिले जब नई कोंपलें निकली थीं, तब सारा पेड़ जैसे सुनहली चादर ओढ़ कर आत्म-विभोर सा हो उठा हो और फिर धीरे धीरे वे किशलय हरे गाढ़े पत्तों में बदल गये थे। और उन घने गाढ़े पत्तों के बीच से झांकते हुए आम के फल, लगता था जैसे धानी साड़ी ओढ़ कर किसी नई नवेली दुलहिन ने अपनी लटकनी वणियों में फूल बाँध रखे हों। गिलहरी एक डाल से उछल कर दूसरी डाल पर जा चढ़ती थी और तब अपनी मुलायम रोयेंदार पूँछ ऊपर उठाकर नचाती थी। शिश···शिश की सिसकारी मारती थी और फिर कूद कर फुर्ती से दूसरी डाल पर चढ़ जाती थी जैसे उसका मन उल्लास से भर उठा हो—आज तो मैं इस पेड़ की माल-

---

१ खम्भा। २ कुएं के दोनों ओर के खम्भों पर जो लट्ठा रखा जाता है। ३ गड़ारी। ४ कुएं के चारों ओर बना चबूतरा।

किन हूँ, मरजी हो जिस पर उछलूं, जिस पर चढ़ूं, कूदूं, यह सभी कुछ तो आज अपना ही है। और खाने के लिए आम जैसा मधुर फल और रहने के लिए आम की डालियों का हिंडोला और फिर कोयल, तोता आदि स्नेहियों का संग।

अपनी हरी पांखों को गर्व से फुलाते हुए तोते एक डाल से उड़ कर दूसरी डाल पर जा बैठे थे। उनकी नन्हीं नन्हीं गोल आँखें प्रसन्नता से हर वक्त नाचती रहती थीं। कभी कभी मानो भावातिरेक में अपनी आँखों की पलकें वे बन्द कर लेते थे कि हृदय में आनन्द का सागर जो तरंगें मार रहा है, वह समूचे का समूचा हृदय में ही समाया रहे और फिर परितृप्त होकर आँखें खोल लेते थे। अपनी लाल लाल ठोरों से आम को कुतर कुतर कर खाते थे और थोड़ा सा खाकर अपनी चोंच से झटका देकर आम को नीचे गिरा देते थे, जैसे उन्हें ध्यान हो कि किशोरों की टोली जब आम बीनने के लिए इस पेड़ के नीचे आयेगी, तब सुग्गाकट्टी आमों को न पाकर वह कितना निराश होगी, इसलिए उनके लिये उपहार का पहले से ही प्रबन्ध कर रखा जाय तभी उनसे दोस्ती निभ सकती है।

कौवे जरा बेतकल्लुफी से इधर-उधर उड़ रहे थे और अपनी कांव कांव से जैसे यह बोध करा देना चाहते हों कि कोई माने या न माने, मैं ऐसा हूँ कि जहां चाहे बिचर सकता हूँ। मेरी गतिविधि में बाधा देने वाला कोई नहीं। मैं एकदम स्वतंत्र प्राणी हूँ।

हरे घने पत्तों के बीच से कोयल की कू कू का स्वर उठ कर जैसे

दिगदिगन्त को सस्वर कर रहा हो, मानो प्रकृति वधू कोयल के रूप में रागिनी छेड़ रही हो।

गापो पूर हांक रहा था और अमिरती मोट छीन रही थी। अमिरती की उमर अभी सत्तरह-अठारह से ज्यादा न होगी। उसका विवाह तो तब हुआ था, जब वह कमर में लंगोटी लगाये घूमती थी। उसे कुछ याद भी नहीं है। बस, उसे इतना हल्का सा याद है कि पीली साड़ी पहनने को मिली थी। उस दिन घर में पूड़ी और खीर बनी थी। एक बड़ा सूअर भी पछाड़ा गया था। सूअर का उसे खास तौर पर याद है, क्योंकि सवेरे अपनी मां के साथ रोज वह भी सूअर चराने जाया करती थी और उसे अपनी मां के मुँह से मालूम हुआ था कि यह सूअर उसके व्याह में पछाड़ा जायेगा। उसकी सूरत अभी भी उसे याद है। भूरे भूरे बाल, भूरा भूरा रंग, कुछ ललाई लिए गर्दन पर के बाल, लम्बा मुँह और थूथुन, एक एक अंगुल के दो दांत दोनों जबड़े से निकले हुए, ललाई ली हुई आँखें। अमिरती का मन भर आया था। रोज उसे चराने जाती थी और आज वह बेचारा मारा जा रहा है। अब कल से वह बेचारा चरने नहीं जायेगा। कितनी शरारत करता था, सीधे चलना जैसे उसे मालूम ही नहीं। फिर भी कितना प्यारा था, अमिरती को लगता था जैसे वह उसका शरारती भाई हो और जान बूझ कर अपनी बहन को तंग करने के लिए रास्ते कुरास्ते भागा भागा फिरता हो। उसके पीछे पीछे दौड़ते दौड़ते अमिरती का मन रूआंसा हो जाता था। फिर भी उस सूअर से उसका स्नेह था और जब हँसी खुशी के दिन उसकी जान गई तो

क्षण भर के लिये अमिरती का मन भर आया।

उसके बाद आठ-दस वर्ष तक अमिरती का गाना नहीं हुआ। फिर अभी साल भर पहले उसका गाना हुआ था और कुछ ऐसा संयोग बैठा कि उसका पति हैजे की बीमारी में देखते-देखते उल्ट गया। अमिरती को दुख तो बहुत हुआ था : किन्तु वह रो-धोकर चुप हो गई थी। उसके सास-ससुर ने उससे कहा भी कि अब चाहे तो वह किसी दूसरे के यहां चली जाय ; पर उसने इन्कार कर दिया था।

रिश्ते में अमिरती गोपी की भौजाई लगती थी। उसका पति गोपी का चचेरा भाई था। जिस दिन अमिरती गोपी के गाँव में नई दुलहन बन कर आई थी, गापी उसे देख कर निहाल हो उठा था। हँसते हुए दोनों हाथ जोड़ कर उसने कहा—

"भौजी परनाम"

अमिरती ने अपनी लजीली आँखों को तिरछी करके उसे देखा.

छरहरा जवान, भींगी हुई मसें, मुसकराता चेहरा और बड़ी-बड़ी आँखें। शरीर का अंग प्रत्यंग शीशा पिलाई लाठी सा गठा हुआ सुडौल।

क्षण भर तक उसे अमिरती देखती रह गयी थी। और वह उसकी आँखों में समाता जाता था।

तब उसके मर्द ने कहा था—

"यह तेरा देवर है, गोपी।"

अमिरती ने मुस्करा कर आँखें नीची कर लीं।

और फिर देवर भाभी में ऐसी पटी कि न जाने लोगों ने क्या क्या नहीं कहा! दिन भर के परिश्रम के बाद गोपी जब घर आता, तो जैसे उसे अमिरती के यहां जाने की भाग दौड़-पड़ी हो। दो क्षण अपने यहां रहना मुश्किल हो जाता। उसकी मां कहती रहती—"हाथ-मुँह धोकर कुछ पानी तो पी ले!"

गोपी कह उठता—

"अच्छा माई, अभी आया!"

और वह अमिरती के यहां जा पहुँचता। इतमीनान से बैठते हुए हुए कहता—

"भौजी, जरा तम्बाकू तो पिलाओ।"

गोपी को देख कर अमिरती का मन प्रसन्नता से खिल उठता। अपनी आँखों को कुछ नचा कर मुस्करा पड़ती और शरारत भरे स्वर में पूछ बैठती—

"सच बोलो, तम्बाकू ही पीने दौड़े आये हो?"

यह कह कर वह फिर कुटिलता पूर्वक मुस्करा देती। उसकी आँखें तिरछी होकर कुछ और भी खिंच जातीं। उसकी भौहों का बांकपन कुछ और टेढ़ा हो जाता। उसकी कसी हुई चोली का तनाव कुछ और बढ़ जाता।

गोपी एकटक देखता रह जाता। कैसी भाभी मिली है। स्नेह की मूरत। दोनों एक दूसरे की ओर क्षण भर तक देखते रहते और फिर ठठाकर हँस पड़ते, जैसे उन दोनों के अन्तर का स्नेह छलक छलक

पड़ता है ।

यह बात नहीं कि उन बातों की टोल-पड़ोस में चर्चा न हो, पर जैसे वे दोनों इस तरफ से उदासीन हों !

कुछ दिन इसी तरह कटे थे और फिर अमिरती का मरद गुजर गया। उसके सास ससुर ने बहुत कहा कि कहीं दूसरी जगह बैठ जाओ। कहीं दूसरी जगह घर बसा लो ! अभी तो सारी उमर पहाड़ जैसी पड़ी है, कैसे काटोगी। फिर देस-दिहात के लच्छन ऐसे हैं कि किसी को सीधी राहें चलने न दे। उसके मां-बाप ने भी समझाया। पर अमिरती टस से मस नहीं हुई थी। उसने साफ कह दिया—

"अभी मुझे दूसरी शादी नहीं करनी है।"

टोल-पड़ोस वालों ने अन्दाज लगाया, अपनी कल्पना शक्तियों को विकसित किया। अपनी जबान को ढील दिया और जैसे भविष्य को बांच कर रख दिया—

"अजी इस भरी जवानी में कौन पद्मनी रानी की तरह सती होगी।"

"सती ? मैं तो कहती हूँ कि यह अब सुहागिन हुई है।"

"इसके मरद का भाग ही फूट गया था कि ऐसी कुलच्छनी के पाले पड़ा था। खा गई खसम को।"

"इसी की कुफुत से मर गया बेचारा। भला कोई मरद बच्चा यह कैसे सहे कि उसकी जनाना दूसरे के साथ ऐस-मौज करे। वह तो कहो वह सीधा था नहीं तो उसकी चमड़ी उधेड़ कर रख दिये होता।"

"पर, तुम मानो, न मानो। गोपी का दिल साफ है। उसने बत-

नीयती से कभी अमिरती को नहीं देखा।"

'हुँह, बदनीयती नहीं! मुँह में मुँह डालकर, जब देखो, फुस-फुस समुजा[1] होता ही रहता था, वह जैसे कुछ हो ही नहीं।"

इसी तरह की कितनी ही टीका-टिप्पणियाँ होती रहीं।

यह बात न हो, कि गोपी और अमिरती के कानों में इस बात की भनक न पड़ी हो, पर गोपी हँस कर उड़ा देता—

"भौजी, तुम दुनिया की बात का विश्वास करोगी कि अपने देवर का! बकने दो जो बकते हैं। उनकी नजरों में जैसे औरत-मरद और कुछ बात कर ही नहीं सकते।"

किन्तु जब अमिरती विधवा हो गयी तब गोपी के मन में अजाने में एक भाव उठा था—'अब भौजी किसी दूसरे के यहाँ बैठ रहेगी। इस भरी जवानी में वह कब तक टिकेगी!'

उसका मन मसोस-मसोस उठता था और उसके अन्तर में एक मौन प्रश्न उठ पड़ता था—

'भौजी से मैं क्यों न विवाह कर लूँ? ऐसा तो हम लोगों में होता ही आया है। बड़ा भाई जब मर जाता है, तब अगर उसकी स्त्री जवान हो तो देवर उसे रख लेता है।'

'किन्तु.........।'

'किन्तु, मां नहीं मानेगी। बाबू नहीं मानेंगे।'

दो पुश्तों से टेगरी के खानदान से और गोपी के खानदान से दुश्मनी

१—गोपनीय बात का परामर्श।

चली आती थी; परन्तु इस दुश्मनी को बाद देकर गोपी और टेगरी में गाढ़ी दोस्ती थी। टेगरी गोपी से चार-पाँच साल बड़ा था तो क्या; दोनों साथ-साथ खेले, साथ साथ बढ़े। उसे याद है—वह नंगा घूमता था और टेगरी कमर में एक लंगोटी मारे। इस रूप में उन्होंने जेठ की दुपहरिया अमराइयों में गुजार दी थीं। खेतों की पगडण्डियों पर घूमे थे। मटर की छीमियाँ तोड़ी थीं, चने के होले उखाड़े थे। बगीचों से आम-अमरूद और बेर तोड़े थे, तालाब में कूद-कूद कर नहाये थे। दोनों के माँ-बाप उन्हें एक साथ न रहने की हिदायत करते, कभी-कभी इसके लिये पीटते भी थे। पर जहाँ दोनों अपने-अपने घरों से बाहर होते, एक साथ हो जाते थे।

जब उसने सुना कि अमिरती ने दूसरी जगह जाने से इनकार कर दिया, गोपी का दिल न जाने कैसा हो उठा था। इस उमिर में भौजी क्यों दूसरी शादी नहीं कर रही है। इतनी बड़ी पहाड़-सी जिन्दगी किसके साथ काटेगी!

उसके हृदय में एक विचार आशा बन कर नाच उठा—'अगर भौजी हमारे साथ रह जाय, तो······कैसा रहे!'

उसने एक दिन जी कड़ा कर के कहा—

"भौजी!"

और आगे कुछ कहने का साहस गोपी का न हुआ था। चुप-चुप अमिरती की आँखों में देखता भर रहा जैसे उसके हृदय का भाव व्यक्त करने में वाणी असमर्थ हो गई हो और उस कार्य का गुरुतर बोझ वाणी-

विहीन आँखों पर ही आ पड़ा हो! और आँखें जैसे अपने भावों को मौन-मूक निवेदन कर रही हों।

अमिरती भी उसकी ओर एकटक देखती रह गई जैसे गोपी ने एक ही शब्द 'भौजी' का उच्चारण कर के अपना हृदय खोल कर रख दिया हो; उसके आगे और कुछ कहने-सुनने की जरूरत जैसे न हो।

किन्तु जैसे दोनों के दिलों की बातों को दोनों के मन ने सुन-समझ लिया। कुछ क्षण तक एक दूसरे की ओर अनवरत, मौन-मूक देखते रहने के पश्चात दोनों ने आँखें झुका लीं।

उस दिन से दोनों का हृदय जैसे उल्लास से भरा-भरा रहता हो, जैसे नयी दुनिया बसाने की मधुर-कल्पना से उनका मन-प्राण पुलकित हो उठा हो। वर्षा के रस-दान से जैसे धरती पर नये अंकुर निकल आये हों।

जब कहीं मौका मिलता, वे मिल जाते। खेत में काम करते समय गोपी इस फिराक में रहता कि अमिरती उसी के साथ-साथ रहे।

और जब ईख में उसे पानी देना था, उसने अमिरती को सरेखा था—"तुम मोट छीन लेना, मैं पूर हाँक लूँगा। हाँ, तुम्हारे यहाँ काम पड़ेगा तो मैं भी काम कर दूँगा। तुम्हारी पइठी[1] मारी नहीं जायेगी।"

अमिरती ने मुसकरा कर मंजूर कर लिया था। यह तो वह चाहती ही थी कि उसे सदा ही गोपी का साथ मिले, किन्तु जब तक उन दोनों की सगाई न हो जाय, तब तक इस तरह मिल जुल कर ही संतोष करना पड़ता था।

१—परिश्रम के बदले परिश्रम कर देना।

मोट का पानी उलीच कर अमिरती ने मोट को कुएँ में डाल दिया। उसके साथ का लगा पानी झर झर कर के कुएँ में गिर पड़ा। गोपी बैलों को नवा कर ले आ रहा था। एक हाथ में बरहा[1] थाम्हे था और दूसरे हाथ में बैलों को हाँकने के लिये पैना[2] था। एकटक वह अमिरती को देख रहा था। हवा के झोंके से अमिरती के बाल उड़-उड़ कर बिखर रहे थे, जिसे अमिरती अपने हाथों से समेट लेती थी। उसके भरे अंगों पर पसीने की बूँदें चुचा आई थीं, और ताप से उसका साँवला मुखड़ा मटमैले ताँबे सा धूमिल हो रहा था, पर उसकी चमक ऐसी थी कि आँखों को मोह ले रही थी।

अमिरती ने लक्ष्य किया कि मोट को कुएँ में चभोरना[3] भूल कर गोपी एकटक उसी की ओर देख रहा है।

अमिरती ने मुसकरा दिया और कहा—

"कैसे मनई हो तुम! इस तरह घर कर देख रहे हो जैसे खा जाओगे!"

गोपी ने तनिक मुसकरा दिया और फिर उसकी आँखों में क्षण भर झाँक कर बोला—

"तो मेरा कसूर है इसमें!"

उसके ओठों पर की शरारत भरी मुसकराहट की रेखा कुछ और खिंच आई।

१—मोट खींचने का मोटा रस्सा। २—साँटी, लकड़ी का डंडा।
३—डुबोना।

अमिरती ने भी उसी तरह मुसकराते हुए कहा—

"नहीं मेरा ! यही न तुम कहना चाहते हो !"

गोपी ने लुब्ध नजरों से अमिरती की ओर देखते हुए कहा—

"और नहीं तो क्या ! सच अमिरती, मैं तो साधारण मनई हूँ। तुम्हें तो राजा इन्दर देखे तो वह भी अपनी सुध-बुध बिसार दे।"

अमिरती ने कुछ तिनक कर, पर मन ही मन उल्लसित होकर कहा— "जब देखो तब तुम मुझे बनाने लगते हो। तभी तो सारा टोल-पड़ोस हम लोगों को बदनाम करता है।"

गोपी अमिरती से एकदम सट कर खड़ा हो गया। दोनों की गर्म श्वाँसों को एक दूसरे ने अनुभव किया। अमिरती का आँचल उड़-उड़ कर गोपी के शरीर का जैसे आलिंगन कर रहा हो।

गोपी ने कहा—

"बदनाम करता है तो करने दो। हम लोग कोई गुनाह कर रहे हैं !"

फिर उसी स्वर में बोला—

"अजी, मेरा क्या बिसात है। हमने अमर सिंह की नौटंकी देखी थी। सच भाभी, अमरसिंह अपनी नयी दुलहन से मिलने जाने लगा था, तब बादशाह शाहजहाँ ने उससे कहा था कि सात दिन से अगर एक दिन भी ज्यादा लगा तो रोज एक-एक लाख रुपया जुर्माना ठोक दूँगा। पर जानती हो भाभी, जब अमरसिंह अपनी दुलहन के पास गया तो सात दिन और ज्यादा रह गया। आने पर खुशी-खुशी सात लाख जुर्माना

भर दिया था ! जब ऐसे ऐसे लोग अपना आपा बिसार देते हैं तब मैं किस खेत की मूली हूँ !"

फिर मुसकरा कर कहा—

"मेरी बात मानो भौजी ! अगर अमर सिंह का व्याह तुमसे हुआ होता तो फिर सारी जिन्दगी जुर्माना देता रहता ; पर लौट कर नहीं जाता।"

यह कह कर उसने अर्थ-पूर्ण नजरों से अमिरती की ओर देखा। अमिरती का चेहरा खिला हुआ था। बोली—"तो तुम भी तो कलियुग के अमरसिंह बनना चाहते हो। क्यों !"

यह कह कर जैसे अपनी बात के अर्थ-गाम्भीर्य को हृदयंगम कर वह लजा गई। उसकी पलकें कुछ झुक आयीं। उन अर्द्धोन्मीलित आँखों से जैसे रस छलका पड़ता हो। गापी ने भाव विभोर होकर कहा—

"जगह-जमीन अमरसिंह की तरह नहीं है तो क्या, दिल उसमे कम नहीं न !"

और उसके गालों पर हलकी ठुनकी लगा बोला—

"मानो मेरी बात भौजी, मैं तो तुमसे हार गया हूँ। जीत तुम्हारी ही है।"

फिर गम्भीर होकर बोला—

"आज मैं माँ और बाबू से कह दूँगा कि अगर मेरा व्याह होगा तो अमिरती भौजाई से ही।"

दोनों की गर्म उच्छ्वासें एक दूसरे को रोमांचित कर रही थीं। दोनों

के धड़कते हुए हृदय जैसे आपस की बात कह-सुन रहे हों—मौन मूक।

× × ×

कुछ क्षण तक दोनों एक दूसरे से सटे खड़े रहे। जैसे वे दोनों जुड़वाँ पेड़ हों : जिनका तना एक साथ एक दूसरे को स्पर्श करता हुआ धरती से उठा हो! दोनों की डालें एक दूसरे का आलिंगन करती हुई एक दूसरे से लगी-लिपटी फैली हों. दोनों की टहनियाँ और पत्तियाँ एक दूसरे से गुथी हों। दोनों का अस्तित्व मिल कर एक हो जाता हो। दूर से और पास से, दोनों एक हों और धरती पर दोनों की छाया एक साथ बिछी हो। आकाश में दोनों एक साथ अपना मस्तक ऊँचा उठाये हों। एक दूसरे का अलग कोई अस्तित्व ही न हो।

तीथे[1] का पानी निथर कर नाली से बह गया था। अब तक तो कम से कम दस-पाँच मोट पानी निकल चुका होता; किन्तु अब तीथे में थोड़ा-सा पानी रह गया था। दोनों बैल खड़े-खड़े सुस्ता रहे थे। धौरा बैल पेशाब कर चुका था और दूसरा पेशाब करता जाता था और अपने मुँह से चभर-चभर पेशाब पीता जा रहा था। उसके गले की घण्टियों की आवाज उसके सर हिलने और झाँटने पर और बढ़ जाती थी। उस घण्टी की टुन-टुन और पेशाब पीने की चभर-चभर के स्वर से अमिरती की तन्द्रा जैसे टूटी। चौंक कर उसने कहा—

"अरे चलो मोट हाँको, देखो तो तीथे का पानी एकदम निथर गया है। नाली का पानी टूटता जा रहा है। और अब जल्दी मोट

१—जहाँ मोट का पानी उलीचा जाता है।

नहीं निकालोगे तो एकदम धार टूट जायगी।"

हड़बड़ा कर गोपी ने बरहा पकड़ लिया। चभोर कर मोट डुबाई और बोला—

"नव!"

इस 'नव' की आवाज सुनते ही जैसे बैलों को अपने कर्तव्य का ज्ञान हुआ। बाँया बैल सिकुड़ कर कुछ सिमिट गया और दाहिना बैल चक्कर लेकर घूम पड़ा। पानी से भरी हुई मोट के वजन से बरहा खिंच कर तन गया। थोड़ा-थोड़ा ऊपर नीचे लटकता जाता था। जैसे उसे अपनी गुरुता का अहसास हो गया हो—हाँ; यह बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं इस धरती पर बरहा बन कर पैदा हुआ। तभी तो अतल कुएँ से पानी खींच कर बाहर ला देता हूँ। वह पानी, जिसे पाने से धरती का आँचल स्नेह-सिक्त हो जाता है। सूखती फसलों का अन्तर तृप्त हो उठता है। उसके रोम-रोम से हरियाली फूट पड़ती है। और वह हरियाली समय पाकर दाने के रूप में बदल जाती है। कृतज्ञ पौधा अपना पुण्य-फल दूसरों को अर्पित कर देता है। और वह अन्न, धरती के प्राणियों को जीवन प्रदान करता है।

धुरई की चूँ-चूँ भी शुरू हो गयी थी। जैसे बरहे के मन में जो उत्साह था, जो भाव थे, धुरई की यह चूँ-चरर उसे बता रही हो कि भाई तुम्हारा जीवन तो सार्थक है ही। पर यहाँ मुझे भी कम संतोष नहीं है। देखो, कितना भार वहन करती हूँ। सूखा काठ था, पर भाग्य का ऐसा प्रबल कि कहाँ आ पड़ा हूँ। दूसरों के काम आ रहा हूँ। यह जीवन

तो सार्थक हो गया है।

गोपी और अमिरती अभी भी जैसे भावना में डूबे हों। गोपी बैलों को फुर्ती से हाँक रहा था। आज जैसे उसके अंग-अंग में नवजीवन का संचार हो गया हो। जैसे वह उड़ा जा रहा हो। जैसे आज इसी क्षण उसने अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त कर ली हो। उमंगों में भरा हुआ था। बैल भी जैसे समझते हों कि हाँ, मौज में है आज हमारा मालिक गोपी। इस तरह चलो कि उसकी भावना को जरा भी ठेस न लगने पावे। उसका मन जो उड़ रहा है उसके साथ उसका शरीर भी उड़ रहा है। और फिर हमीं लोग क्यों पीछे हटें! हाँको जितना तेज हाँक सकते हो। इसी कन्धे के बल से तो हमने सारी धरनी को चीर कर रख दिया है। उसका वक्षस्थल फोड़ कर धरती पर अन्न के दाने बिखेर दिये हैं। इसी कन्धे के बल से कुएँ का पानी उचील कर तप्त धरती का हृदय शीतल कर दिया है और तभी तो धरती के आदि-युग से आज तक, धरती के राजा मानव के साथ हमारा भाई-चारे का सम्बन्ध चला आ रहा है।

दो घड़ी तक गोपी इसी तरह तन्मय होकर पूर हाँकता रहा। बैल उसी तरह शान के साथ उल्लास भरे चलते रहे। अमिरती उसी तरह भावना में डूबी मोट को छीनती रही। इस बीच में बैलों को नवाते समय गोपी की बँधी आवाज 'नव', घुरई की 'चूँ चरर' और मोट से पानी उचीलने का स्वर 'हर-हर' तथा तीथे में से नाली में आते समय पानी की धार का सरसराना, कभी-कभी हवा के झोंके से हरहराते हुए आम और

कटहल के पेड़ और ऊपर बैठी चहकती पक्षियों का स्वर मुखरित होता रहा; नहीं तो गोपी और अमिरती जैसे भावना में डूबे रहे। अभी जो उन्होंने आत्मानन्द की चरम अनुभूति प्राप्त की, जो उनके जीवन की चरम साध की प्रथम रश्मि फूटी है, उससे उनका तन-मन आत्मविभोर हो उठा।

गोपी ने बरहे को एक हाथ से पकड़ कर जरा ढील दिया और बैलों से कहा—'होर!'[1]

दोनों बैल खड़े हो गये। दोनों ने एक बार अपनी नीली-नीली, बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर गोपी की ओर देखा। उन आँखों में जैसे अभिमान और गर्व हो। जैसे वे कह रही हों—

'देखो, हम भी हारने वाले नहीं हैं। अभी क्या, सारा दिन और सारी रात तुम्हारे साथ हम छाती फाड़ कर काम करने के लिये तैयार हैं। तुम जो हमारे खिलाने-पिलाने का इतना ध्यान रखते हो, हर वक्त हमारी पीठ स्नेह से थपथपाते रहते हो, जो हमें अपने सगे छोटे भाई सा स्नेह देते रहते हो, सो हम पशु हैं तो क्या, स्नेह हम भी पहचानते हैं, और तुम्हारे साथ मरने-मिटने के लिये सदा तैयार हैं। परिश्रम करने से हम कभी पीछे नहीं हटेंगे।'

पुचकार कर गोपी ने दोनों बैलों के पुट्ठों को थपथपा दिया। दोनों ने अपनी गर्दन डाल दी, जैसे पिता अपने बच्चे को चुमकार कर उसका माथा चूम ले और बच्चा पिता की छाती से अपना मस्तक टिका देता है।

१—स्थिर, ठहरो।

अमिरती ने भी प्रश्न सूचक आँखों से गोपी की ओर देखा। कहा कुछ नहीं, जैसे मौन शब्दों में पूछ रही हो—

"क्या अभी पूर बन्द कर दोगे? अभी तो दोपहरी भी खड़ी नहीं हुई। यह देखो, अभी पेड़ की छाया कुछ पश्चिम की ओर मुड़ी हुई है। नहीं तो दोपहर होने पर तो एकदम अपने नीचे जैसे समा जाने का प्रयत्न करने लगती है।"

गोपी ने जैसे उसके मौन प्रश्न का भाव समझ लिया लिया। कहा—

"जरा एक फूँक तम्बाकू पी लूँ। तुम भी सुस्ता लो।"

फिर बैलों की ओर देख कर कहा—

"और बैलों के सामने थोड़ा पुआल डाल दो। ये भी मुँह चला लें।"

मोट को अमिरती ने तीथे पर टिका दिया। एक तरफ बोझ बाँध कर रखे पुआल में से थोड़ा खींच कर पौदर[1] पर रख दिया। दोनों बैलों ने भर-मुँह पुआल उठा लिया और चभुला-चभुला कर खाने लगे।

राख में ढँकी आग को अमिरती ने चिमटे से कुरेद कर बाहर किया। तब गोपी ने तम्बाकू को भुरभुरा कर चिलम पर रख दिया। उसके ऊपर मिट्टी का बना तवा रख दिया और अमिरती के हाथ से चिमटा लेकर आग के छोटे-छोटे टुकड़े करके चिलम पर चढ़ाने लगा। जब तक गोपी ने चिलम भरा, अमिरती ने ओटे को दीवाल से टँगा नारियल का हुक्का उतार कर गोपी की ओर बढ़ा दिया। गोपी हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

१—पूर खींचने के लिए कुएँ के पास की ढालुआँ जमीन।

गोपी हुक्का गुड़गुड़ाता जाता था, और अमिरती कभी गोपी के मुँह की तरफ देखती थी,और कभी सर झुका लेती थी, और तब उसकी आँखों की पलकें कुछ और भी झुक जाती थीं। उसके ओठ हिल कर रह जाते थे। जैसे कोई खास बात उसके ओठों पर आ-आ कर वापस लौट जाती हो।

गोपी ने लक्ष्य किया और प्रश्न-सूचक आँखों से उसकी ओर देखा।

अमिरती ने सर झुकाये ही कहा—

"एक बात कहूँ!"

गोपी ने कुछ सतर्क और कुछ आशंकित होकर अमिरती की ओर देखा। फिर बोला—

"क्या बात है!"

"यह चौधरी हम लोगों के व्याह में अड़ंगा डालेगा।"

ठठा कर गोपी हँस पड़ा। बोला—

"बस, यही बात न! मैं तो डर गया था, जाने तुम क्या कहोगी!"

और फिर अपनी हँसी रोक कर आश्वासन के स्वर में कहा—

"चौधरी का तो यही काम ही रहा है। शादी हो, व्याह हो, कोई कार-परोजन हो, बिरादरी में कोई भी मामला आ पड़े, चौधरी अपनी टाँग बिना अड़ाये मानेगा नहीं। बड़े-बूढ़े उसकी हर बात को अकाट्य समझते हैं; जो वह कहता है, सर झुका कर मान लेते हैं। नहीं तो उसकी क्या हस्ती है। तुम उसकी फिक्र न करो। अब बूढ़ों का जमाना नहीं रहा। अब हम नवजवानों का जमाना है। अब हम पुराना सड़ा-गला

ढाँचा तोड़ फेकेंगे।"

तम्बाकू के धुएँ का एक गोला उसने अमिरनी के मुँह पर फेंक मारा। कुण्डली मारता हुआ मटमैला, आसमानी धुँआ छितरा कर अमिरनी के मुँह पर बिखर गया, जैसे वनस्पतियों से घिरी हरी गाढ़ी साँवली पहाड़ी पर जल भरे श्यामल बादल छितरा कर फैल गये हों।

अमिरनी के मुँह में कुछ धुआँ चला गया। वह खाँसने लगी। कुछ धुआँ उसके बालों से उलझ गया था। कुछ उसकी आँखों में समा गया। आँखों में हलकी सी कड़वाहट सी हो गयी। अपने मुँह और आँखों को अपनी दोनों हथेलियों से मलती हुई अमिरनी ने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। फिर आँखों को फैला कर तिरछी भौंहों से तरेर कर गोपी की ओर देखा। किन्तु उसके जबरदस्ती बन्द किये ओठ जैसे उसके अन्तर की खुशी को छिपाने में असमर्थ हो रहे हों। उसके ओठों पर मुसकराहट फैल गयी।

गोपी ने एक फूँक और धुआँ उसके ऊपर उड़ेलते हुए कहा—

"सच, मैं चौधरी-औधरी से नहीं डरता। अगर डरता हूँ तो तुमसे, और तुम्हारी इस फब पर। और फिर 'मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काजी!' जब हम-तुम तैयार हैं तो चौधरी क्या करेगा!"

अब की कुछ गम्भीर होकर अमिरनी ने कहा—

"नहीं, सच मानो, रूपा की बात को ले कर जो तुमने चौधरी और पञ्चायत का अपमान किया, उससे वे सभी खार खाये बैठे हैं। सुना है, रूपा का हुक्का-पानी तो बन्द करेंगे ही, तुम्हारे ऊपर भी सासती

बढ़ायेंगे !"

गोपी ने कुछ अकड़ कर कहा—

"अरे चलो, रहने दो। अब चौधरी को मालूम पड़ेगा कि मिट्टी के लौंदे से नहीं; चट्टान से पाला पड़ा है। वह भी पछतायेगा कि नरम चारे के भरम में कड़े चारे पर मुँह मार दिया है, जिससे पीछा छुड़ा लेने में ही कल्याण है।"

कहते कहते गोपी की छाती तन गयी। उसके गले की नसों में तनाव आ गया। जैसे उनमें जवानी का गर्म, ताजा खून वेग से प्रवाहित हो उठा हो।

अमिरती ने उसी तरह संत्रस्त की तरह कहा—

"नहीं, तुम मानो, कल सुगनी से बात हुई थी। बोली—'उस दिन गोपी देवर ने जो जवामर्दी दिखलाई, वह और किसी के बूते की बात नहीं। नहीं तो न जाने उस दिन हमारे मरद की वे निर्दयी क्या गत बनाते। पर चौधरी अभी अपनी ईख सींचने में उलझा है। सुनती हूं, जैसे ही खाली होगा, हम लोगों को जात-बाहर कर देगा। हुक्का-पानी बन्द कर देगा। परगना भर में डुग्गी पिटवा देगा कि हम लोगों से जो सम्बन्ध रखेगा वह भी जात से बाहर कर दिया जायेगा और उसका भी हुक्का-पानी सब बन्द कर दिया जायगा।"

गोपी ने देखा, अमिरती के मन में सचमुच भय समा गया है। उसने हँस कर कहा—

"पगली, वह हम लोगों का हुक्का-पानी बन्द करेगा कि हम लोग

उसका हुक्का-पानी बन्द करेंगे! उसका जमाना तो अब उठ गया। देखती नहीं, जितने नवजवान हैं, क्या मर्द, क्या औरत सब हमारे साथ हैं। खुद उसका लड़का बिसेसर भी हमारे साथ है।"

अमिरती पूरी तरह तो आश्वस्त नहीं हुई, पर उसको कुछ संतोष जरूर हो गया। उसके मुँह पर से चिन्ता का बोझ जैसे कम हो गया। चेहरे पर कुछ हल्कापन उभर आया एक निश्चिन्तता का।

फिर बोली—

"सुगनी तुम्हारी तारीफ करते अघाती नहीं थी। उसका रोम-रोम तुम्हारा गुणगान कर रहा था। तुम्हारी तारीफ सुन कर मैंने मजाक में कहा—"तुमने उन्हें अच्छी तरह समझा नहीं है। अच्छे आदमी नहीं हैं, बड़े लड़ाकू हैं।"

उसने कहा—

"जहाँ मौका पड़ेगा, वहाँ मर्द का बच्चा तो लड़ेगा ही। क्या भाग खड़ा होगा!"

"सच मानो उसका रोम रोम तुम्हें असीसता है।"

गोपी—"तो उसके असीस का फल तो मिल गया मुझे! उसकी असीस तो बड़ी फलदायक निकली!"

यह कह कर वह मुसकरा उठा।

अमिरती—"क्या फल मिला, मैं भी जरा सुनूँ। कहीं कोई गड़ा खजाना तो नहीं पा गये!"

गोपी—"मारो गोली खजाने को। मैं तो खजाने से भी बड़ी

चीज़ पा गया !"

अमिरती—"क्या ! कुछ सुनूँ भी तो !"

गोपी ने शरारत से मुसकरा कर कहा—

"तुम !"

अमिरती ने बनावटी क्रोध से आँखें तरेर कर गोपी को देखा।

दोनों साथ ही ठठा कर हँस पड़े।

卐

५

रूपा वाले मामले को लेकर भरी सभा में दलथम्भन चौधरी का जो अपमान हुआ, उससे वे तिलमिला उठे। उन्हें लगा जैसे भरी सभा में किसी ने उनके दोनों कान उमेठ कर गाल पर तड़ातड़ चाटे जमा दिये हों। चौधरियाँव करते करते उनका बुढ़ापा आ गया था। आज तक बिरादरी के सैकड़ों मामलों की उन्होंने पञ्चायती की थी। उनके इशारे पर बिरादरी के लोग उठते-बैठते रहे हैं। पेचीदा से पेचीदा मामले को उन्होंने निपटाया था। एक से बढ़ कर एक सख्ती उन्होंने बरती थी, पर मजाल क्या कि उनकी बात को कोई काट सके। उनके फैसले में कौन ननुनच कर सके। कोई नुक्स निकाल सके। ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

गोपी ने जो रूपा की छाती से उठा कर पत्थर फेंक दिया, और

उसकी मुश्कें खोल दी थीं, फिर उसने और उसके साथियों ने जो चौधरी दलथम्भन से झड़प की थी, तो बिरादरी की वह सभा वहीं की वहीं खतम हो गयी थी। हालाँकि चौधरी दलथम्भन को खुश करने के लिये गोपी के बाप परमेसर ने अपनी पगड़ी उतार कर चौधरी के पैरों पर डाल दी थी। उनके चरणों पर अपना सर पटक दिया था। पर चौधरी दलथम्भन का गुस्सा शान्त नहीं हुआ। फूल के भ्रम में जैसे कोई दहकता हुआ अंगारा उठा ले और उसके तीव्र दाह से वह छनछना उठता है, अंगार हाथ से छूट तो जाता है, पर उसकी जलन शेष रह जाती है, उसकी पीड़ा रह जाती है, उसी तरह उस दिन का कांड कुछ मिनटों में ही खत्म हो गया था; परन्तु चौधरी दलथम्भन के मन पर जो चोट लगी, उसका आहत अभिमान जो तिलमिला उठा था, उससे वे प्रतिशोध की ज्वाला से दहक उठे। किस तरह वे इन गुस्ताख लौंडों को सजा दें, यही बात उनके दिमाग़ में चक्कर काटने लगी।

किन्तु इसके लिये तत्काल मौका उनके पास नहीं था। उनकी सबसे बड़ी लड़की के व्याह का दिन पड़ चुका था। उन्हें भय हुआ कि अगर इस बीच में मामले को हाथ में लेते हैं तो ये छोकरे इतने उद्दण्ड हो गये हैं कि जाने क्या कर बैठें। इन्हें न तो अपनी इज्जत का ख्याल है और न दूसरों की! और इनकी इज्जत ही क्या है! दो कौड़ी के लौंडे हैं, इन्हें तो कोई मारे-पीटे, लतियाये, इन्हें कौन जानता है! किन्तु मेरी बात तो दूसरी ही है, जरा-सा भी ऊँच नीच हो जाय, दस गाँव में लोगों की जबान पर बात फिरने लगेगी।

फिर दूसरे गाँव से बारात आयेगी, दस हित-नात जमा होंगे, भाई-बिरादरी वाले आयेंगे और उस बीच अगर इन लौंडों ने कोई खुराफात कर दी तो मेरी क्या रह जायगी। कुछ न हो;दस बिरादरी वालों के सामने मेरी बात का उल्टा-सीधा जवाब ही दे दें तो मेरा पानी उतर जायगा। फिर एक बार तो गाँव वालों के सामने मेरी इज्जत उन सबों ने बिगाड़ ही दी थी, अब बाहर वालों के सामने भी मुझे नीचा देखना पड़ेगा। ये तो नंगे हैं, इनकी क्या इज्जत ! कुत्ते की जात ठहरे ! पानी तो मेरा न उतर जायगा !

यही सब बातें सोच कर चौधरी दलथम्भन ने उस समय तो गम खा लिया—सोचा, बेटी के व्याह-शादी से निपट जाँय, फिर अगर एक-एक की नस ढीली नहीं कर दी तो चौधरी दलथम्भन के नाम से कोई कुत्ता पाल ले !

केवल यही नहीं कि उस दिन की बात को लेकर चौधरी दलथम्भन को ही अपमान महसूस हुआ हो, गाँव के और भी जितने बड़े-बूढ़े थे, उन लोगों को भी इसमें अपमान मालूम हुआ था कि चौधरी की बात को लड़के काट दें। बड़े-बूढ़ों के बीच में पड़ने की उन्हें जरूरत ही क्या है और अगर इसी तरह बिरादरी के मामले में वे दखल देने लगे तो यह समाज चल चुका। इस बात पर सभी बड़े-बूढ़े एकमत थे कि लौंडों को सर चढ़ाना ठीक नहीं। वैसे ही वे काफी गुस्ताख हैं। किसी की इज्जत नहीं करते, कोई कायदा-शऊर नहीं। बाप बैठा है और उसके सामने बैठे तम्बाकू का धुँआ उड़ा रहे हैं। हा-हा, ही-ही कर रहे हैं, जब देखो,

बात-बात में दाँत निपोर कर हँसने लगते हैं; यह सब भी कोई कायदा-शऊर है ! और अब तो बात यहाँ तक आ गयी कि भरी सभा में बड़े-बूढ़ों को वाही-तबाही बकने लगे। अब जरूर इनकी रोक थाम करनी पड़ेगी।

दलथम्भन की बेटी का जब व्याह खत्म हो गया तो एक दिन उनके चौपाल में गाँव के दो-चार बड़े-बूढ़े इकट्ठे हुए ! वे सभी इस बात पर सहमत थे कि इन लड़कों को अभी से दबा कर नहीं रखा गया तो एक दिन वह ऊधम मचायेंगे कि भलेमानसों का जीना मुहाल कर देंगे। कुत्ते को जरा-सा पुचकार दो तो वह मुँह चाटने लगेगा।

चौधरी दलथम्भन ने अपने हलवाहे को पुकार कर कहा---

"बसवना ! जरा हुक्का ताजा करके चिलम तो भर ला !"

बसावन की उम्र पैंतीस के आस-पास थी। वह भी जात का चमार था। चौधरी के यहाँ हलवाहे का काम करता था। चौधरी के पास जमीन तो ज्यादा नहीं थी, पर एक हल के लिए काफी खेत थे। और सब काम तो वह तथा उनके घर की औरतें अपने हाथ से कर लेती थीं, किन्तु खेत जोतने के लिये उन्होंने आदमी रख लिया था। चौधरी का बड़ा लड़का बिसेसर बीस बरस का हो गया था, पर चौधरी उससे हलवाही का काम लेना ठीक नहीं समझते थे। इसका जब प्रसंग चलता था, तो वह कहते थे, अभी से उसे क्या हल की मूठ पकड़ा दूँ। भगवान ने दिया है तो आदमी रख कर काम करा लूँगा। दूसरे, बिसेसर के ऊपर चौधरी का पूरा विश्वास नहीं था कि वह इस काम को अच्छी तरह निभा सकेगा।

वह कहते—इसे तो फालतू कामों से ही फुरसत नहीं मिलती है। अखाड़े का परबन्ध यह करे, माँग-मूँग कर किताब और अखबार जमा यह करे, और अपने ऐसे दस हुरहुण्डों को जुटा कर गला फाड़-फाड़ कर सुनाये, ऐसे गैर जिम्मेवार आदमी को हलवाही ऐसा महत्वपूर्ण काम कैसे दिया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने हल जोतने के लिये बसावन को रख लिया था।

बसावन ने हुक्के का पानी एक तरफ गिरा दिया। हल्का पीला, मटमैला पानी घड़-घड़ करके बाहर निकल गया। हल्की सी दुर्गन्ध निकल कर हवा में फैल गई। फिर उसने लोटे में ताजा पानी ले कर हुक्के की निगाली पर एक हाथ की हथेली का चोंगा बना कर पानी भरा। हुक्के की पतली नली से पानी जब नारियल में जाता तो हुड़-हुड़ की हल्की आवाज होती थी, लगता था जैसे चूहे की बिल में पानी जा रहा हो। नारियल जब एकदम भर गया तो बसावन ने फूंक मार कर थोड़ा पानी बाहर निकाल दिया। पानी की पतली धार कुछ ऊँची उठ कर टूट कर बिखर गई। फिर हुक्के को पुड़पुड़ा कर उसने देख लिया कि पानी जरूरत से कम-ज्यादा तो नहीं है न! फिर तम्बाकू को भुरभुरा किया और बड़े इतमीनान से तमाखू चढ़ाने लगा। अँगीठी से आग निकाल कर उस पर रख दिया।

तमाखू चढ़ा लिया तो उसने चिलम को हुक्के पर रख कर चौधरी की ओर बढ़ा दिया।

चौधरी ने हुक्के को गुड़गुड़ाना शुरु कर दिया। पहले तो थोड़ा-थोड़ा

धुँआ निकलता रहा; पर जब तमाखू जग गई तो धुएँ का छल्ला निकलने लगा। चौधरी तम्बाकू पीते हुए जैसे विचारों में खोये रहे, जैसे किसी समस्या का समाधान ढूँढ़ रहे हों।

हुक्के को चौधरी ने मँगरू की ओर बढ़ा दिया। फिर बसावन की ओर देखकर कहा—

"यहाँ क्या बैठा है! जा बैलों के ढाबे में। यही तो तुम्हारी आदत है; जरा भी बैलों का ख्याल नहीं रखते। अपने जी सा ही उनका भी जी समझना चाहिये। अनबोलता पशु हैं तो क्या, उन्हें भूखों मार डालोगे!"

उनके स्वर में झुँझलाहट स्पष्ट रूप से थी।

दरअसल उन्हें अपने इन हमजोलियों और दोस्तों के साथ कुछ बहुत ही जरूरी बातें करनी थीं। कुछ परामर्श लेना था। उनका रुख समझना था, इसलिये ऐसी महत्वपूर्ण बातचीत के समय हलवाहे की उपस्थिति उन्हें अखर रही थी। छोटे मुँह का आदमी ठहरा, बात पेट में पचेगी नहीं, इधर-उधर उगलता फिरेगा। फलतः उन्होंने उसे वहाँ से एक बहाने से हटा दिया।

मंगरू ने हुक्का थाम्ह लिया और गुड़गुड़ाने लगा। दो एक कश लगा चुका तो बोला —

"चौधरी भइया, बिटिया के विवाह में तो तुमने दिल खोल कर खर्च किया। चारों ओर शाबाश शाबाश हो गया।"

यह कह उसने चौधरी दलथंभन की ओर प्रशंसासूचक दृष्टि से

देखा। किन्तु उसकी आँखों में बनावट स्पष्ट झाँक रही थी। सुखदेव ने देखा कि यह मँगरू हर मौके पर बस चौधरी को अपने पक्ष में करने में लगा रहता है। जहाँ वाहवाही लूटने का मौका रहता है कि टप से बोल देता है। इसीलिए तो चौधरी उसे बहुत मानते हैं। फिर मैं ही क्यों ऐसे मौके को हाथ से जाने दूँ। बोला—

"यह क्या तुम कुछ नई बात कह रहे हो! अरे यह कहो कि हमारी बिरादरी में, इस गाँव में चौधरी ऐसा जीवट वाला है, जिसने इस गाँव का नाम देस-दिहात में उजागर कर दिया है। नहीं तो कौन जानता था इस गाँव को! फिर तुम यह कैसे कह रहे हो कि इसी व्याह में चौधरी ने दिल खोल कर खरच किया है, हम तो आज नहीं, शुरू से ही देखते चले आ रहे हैं कि जहाँ कोई मौका मिला कि फिर चौधरी हाथ खोल कर लुटाते हैं।"

फिर जैसे गद्-गद् होकर कहा—

"भगवान किसी को दे तो फिर खर्च करने के लिए वैसा ही दिल भी दे। नहीं तो हम क्या नहीं देखते हैं, इसी गाँव में एक से बढ़ कर एक गृहस्थ हैं। उसके यहाँ साल में सौ-पचास मन अनाज हो जाता है। सौ-पचास रुपये नौकरी-चाकरी के भी उनके घर में आ जाते हैं। कहने के लिए तो बड़कवा बनते हैं पर हैं सोंठ की गाँठ। चिड़िये का दिल है उनका नन्हा सा!"

चौधरी अपनी तारीफ सुन कर प्रसन्न जरूर हो रहे थे, परन्तु वे इस समय उस दिन के मामले पर बात करना चाहते थे। अपने इन शुभ-

चिन्तकों से परामर्श लेना चाहते थे कि कौन सा रास्ता अख्त्यार किया जाय, जिससे गोपी की हेकड़ी दूर हो जाय। साथ ही उसके साथियों का दिमाग भी ठंढा हो जाय; नहीं तो अगर इसी तरह उन्हें खुले साँड़ की तरह मनमानी करने के लिए छोड़ दिया जाय तो आज इसके पीछे पड़े हैं, तो कल उसके पीछे पड़े हैं। उन्होंने कहा—

"शादी-व्याह, कार-परोजन में तो जितना जिससे समाता है, खर्च बरच करता ही है। हाँ, मुदा यह भी बात है कि अपना-अपना दिल है, अपना-अपना व्यवहार है।"

चौधरी की बातें सुनकर जियावन कुछ कहने ही जा रहा था। उसने सोचा कि वह भी क्यों न चौधरी की तारीफ़ में दो शब्द कह दे। मँगरू और खदेड़ू ही क्या सुर्खरू बने रह जायँ। उसे क्या बात करने नहीं आती कि वही जबान बाँध कर बैठे; पर उसके कुछ कहने के पहले ही चौधरी दलथंभन अपने ही सुर में कहते गये। उन्होंने आगे कहा—

"आज हम लोग यहाँ हैं तो मैं एक ऐसी बात उठाना चाहता हूँ, जिसके बारे में हम लोगों को कुछ न कुछ निर्णय कर ही लेना होगा।"

उनके कहने का ढंग ऐसा था जिससे गुरुता प्रकट हो रही थी। एक-एक शब्द को जैसे तौल कर कह रहे हों।

मँगरू और खदेड़ू के सिवा इस समय घुरफेकन और जियावन भी हाजिर थे। चमटोल के ये चारों आदमी और चौधरी दलथंभन में बड़ी घनिष्टता थी। उनकी आपस की यह घनिष्टता हृदय की निष्पक्षता पर कायम नहीं थी; बल्कि आपसी स्वार्थों का समझौता था। ज्यादा फायदा

तो चौधरी दलथंभन का ही था। इन सब के माध्यम से वे अपना मन-चाहा प्रचार कर लेते थे। अन्य चारों का लाभ यही था कि दूसरे लोग उन्हें चौधरी का मुँह-लगा समझ कर उनसे भी भय खाते थे। साथ ही उन सब को इसका गर्व था कि चौधरी ऐसे मातबर आदमी के साथ उनका उठना-बैठना होता है।

चौधरी की बातें सुन कर चारों ने उनकी ओर देखा। उनकी आखों में प्रश्न उठा हुआ था—

"खोल कर कुछ कहो भी तो।"

और साथ ही उन सबों का दिल एक आशंका से भर गया। जाने चौधरी क्या बात सुनाने जा रहे हैं।

चौधरी की मुखाकृति और भी गम्भीर हो उठी। उन्होंने कहा—

"हमें इन लौंडों का दिमाग ठण्डा कर देना चाहिए। उस दिन उन सबों ने जो बदतमीजी की वह कोई मामूली बात नहीं है। जिसमें उस गोपी को तो हमें ऐसा सबक सिखाना चाहिए, जिससे उसकी हेकड़ी सदा के लिये भूल जाय। बचा का अभी तक किसी से पाला नहीं पड़ा है, इसीलिए इतना उड़ रहा है।"

उनके मुँह पर घृणा और क्रोध जैसे समान रूप से हावी हों।

गोपी का नाम सुन कर चारों ही आदमी एक साथ बोल पड़े—"चौधरी, मेरी बात मानो, और जो छोकरे हैं वह तो अपने आप ही शान्त हो जायेंगे: पर यह जो परमेसरा का बेटा गोपिया है न, वही सारी आफ़तों की जड़ है!"

चौधरी—"चाहे जिस तरह से हो हमें उसका दिमाग ठंडा करना ही पड़ेगा।"

यह कहकर उन्होंने अपने निचले ओठ अपने दाँतों से दबा लिया। उनकी खिचड़ी मूछें कुछ और छितरा कर नीचे झुक आईं। उनकी आँखें कुछ और फैल गईं। इससे उनकी मुखाकृति कुछ विकृत सी हो गई।

घुरफेकन की परमेसर से भीतर ही भीतर अदावत चली आ रही थी। दोनों चचेरे भाई थे। अलगा-गुजारी से समय दोनों का मनमुटाव और भी बढ़ गया था। घुरफेकन के ख्याल से परमेसर ने उस समय एक हाँड़ी गुड़ अलग छिपा कर रख दिया। उसमें हिस्सा उसे नहीं मिला था। इस बात को बीते आज चालीस बरस से पार होने को आया था, पर उसे नहीं भूलता था। उसी मामले को लेकर कई बार उनसे कहा-सुनी हुई और जिद्द बढ़ती ही गई थी। फिर तो जैसे एक की हर एक बात दूसरे को चिढ़ाने के लिए ही हो। परमेसर तो खैर तरह दे जाता था; पर घुरफेकन का स्वभाव ऐसा था कि हर वक्त परमेसर को नीचा दिखाने के फेर में रहता था—उसके खिलाफ़ चुगली करना, मौका पा कर दूसरों को उसके खिलाफ़ उभाड़ना, उसकी शिकायत करना आदि कोई भी मौका वह नहीं चूकता था। आज भी ऐसे मौके को वह हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। उसने कहा—

"चौधरी, मेरी बात मानो, गोपिया का दिमाग बढ़ाने वाला उसका बाप परमेसरा है। नहीं तो उस छोकरे में कितना बूता है।"

जियावन ने उपेक्षा बरत कर बात काटते हुए कहा—

"आजकल के लड़कों का दिमाग वैसे ही चढ़ा हुआ है; पर जो जैसा होगा, उसे वैसा फल मिलेगा। गोपी का दिमाग बढ़ा है तो उसका फल भी उसे ही भोगना पड़ेगा। हां, साथ में उसके घरवाले भी परेशान होंगे।"

चौधरी—"तुम लोग सोचो, यह कोई मामूली बात है कि पंचायत के फैसले को वह उलट दे। किस तरह से आगे बढ़कर उसने रूपा की छाती पर से चक्की उतार फेंकी थी और फिर कितनी मगरूरी की बातें कर रहा था जैसे कहीं का लाट साहब हो। हुँह!"

आगे उन्होंने कहा—

"क्रोध तो मुझे उस दिन ऐसा आया था कि अभी उसे पँचलतिया का हुकुम दे दूँ, लातों के मारे उसका कचूमर निकलवा दूँ, पर जरा गम खा गया। सोचा, लोग कहेंगे कि चौधरी ने उतावलेपन से काम लिया।"

चौधरी की बातें सुनकर धीरे से कुहनी से घुरफेकन ने जियावन को धक्का दे दिया। दोनों ने मुँह फेर कर जरा सा मुसकरा दिया। दोनों के मन में एक ही बात गूँज रही थी—

"कचूमर क्या खाक उस दिन उसकी कोई निकलवाता। गाँव के सभी छोकरे तो उसके साथ थे। और गोपी अकेले भी क्या कुछ कम है। दो जवानों को तो वह अपनी बगल में दबा कर पेड़ पर चढ़ जाय। सो जो उस दिन गम खा गये वह उसके लिए नहीं, अपनी खातिर।"

घुरफेकन ने कहा—

"चौधरी, मारपीट का दंड तो ऐसा है कि आज चोट लगी और कल

बिसर गया। जात-बिरादरी का जब दाप चढ़ेगा, तभी वे सब ठंढे होंगे। जब उसका हुक्का-पानी बन्द हो जायगा, शादी-व्याह में कोई नहीं जायेगा, उसके साथ उठना-बैठना बन्द हो जायगा, एकदम अकेला हो जाएगा, तब उन सबको आटे-दाल का भाव मालूम होगा।"

चौधरी—"हाँ यह तो ठीक है। गोपी के साथ-साथ हमें रूपा को भी रगड़ना पड़ेगा। उस समय उन लोगों ने उसके ऊपर से चक्की जब उतार दिया, उसकी मुश्क खोल दी तो वह भी तो उनका बल पाकर बढ़-बढ़ कर बातें करने लगा था। बल्कि पहले से वह कैसा अकड़ रहा था। मैं तो कहता हूँ, उस समय उसके ये बदज़ात साथी भी नहीं आये थे—फिर हम इन्हीं दोनों को क्यों देखें—उनके और भी दो चार साथी खुले-आम हम लोगों के खिलाफ जो प्रचार कर रहे हैं, उन सभी के साथ निपट लेना चाहिए।"

फिर कुछ और भी गंभीर होकर उन्होंने कहा—"बिरादरी का दंड तो चढ़ेगा ही। मुंशी जयकिशन लाल से कह कर काम पर से रूपा को हटाना पड़ेगा। उनके काम के लिये दूसरे आदमी का प्रबन्ध कर दिया जायेगा और गोपी के लिए कोई दूसरी ही सजा तजबीज करनी पड़ेगी।

यह कह कर वे चुप हो गये। उनकी आकृति और भी खूंखार मालूम पड़ने लगी जैसे भेड़िये ने छलाँग मार कर अपने शिकार को फाड़ खाने का निश्चय कर लिया हो।

खदेड़ू के मन में एक आकांक्षा उठ आई। उसने सोचा—अगर रूपा की जगह पर मेरा लड़का सहतू मुंशी जी का काम-धाम करे तो कैसा

होगा ! फिर तो साल भर खाने-पहनने का दुख-दरिद्दर मिट जायेगा। मुंशी जी हैं तो एक ही पैनी छुरी वाले, पर ऐसे तो सभी गृहस्थ हैं। अभी तक बेटवा बेकार मारा-मारा फिरता है।

अपने मन के भाव को दबा कर उसने कहा—

"यह तुमने खूब सोचा चौधरी, जब दाने-दाने को मुहताज हो जायगा, तो उसे पता चलेगा कि मगरूरी दिखाने का क्या फल मिलता है। तब उसकी नस ढीली होगी।"

खदेड़ू के चेहरे पर प्रसन्नता चमक उठी। उसके दिल का भाव मगरू ने जैसे ताड़ लिया हो। बोला—

"पर मुँशी जी अपने बनिहार को हम लोगों के कहने से छुड़ायेंगे क्यों !"

खदेड़ू "हमारे-तुम्हारे कहने से नहीं हटायेंगे; पर चौधरी की बात को तो वह भी मान जायेंगे। चौधरी की वजह से उनको साल में सैकड़ों की आमदनी है। मुँशी जी जब चाहते हैं, दस आदमी चौधरी के कहने से उनकी हरी-बेगारी में चले जाते हैं। उनका काम-धाम करते हैं और फिर उनका नुकसान क्या होगा ! रूपा हटेगा, उससे भी अच्छा आदमी उनको दे दिया जायगा।"

अपनी बात के समर्थन के लिये उसने चौधरी दलथंभन की ओर देखा।

मँगरू—"मुझे तो ऐसा विश्वास नहीं है। ये बड़की जात वाले अगर अपना फायदा देखें तो अपनी जोरू तक को बेच दें और गधे को भी

अपना बाप बना लें, पर जहाँ उनका मतलब नहीं निकलता, वे सीधे मुँह बात ही नहीं करेंगे।"

चौधरी—"लाला जी को मैं राजी कर लूँगा। उसकी चिन्ता तुम लोग न करो।"

फिर जैसे कुछ सोच में पड़ गये। बोले—

"अरे भाई, अभी इस साल लाला जी के लिये सेरही वसूल नहीं हुई है। देखो, कल अपनी चमटोल से वसूल कर लेना है।"

बात का तारतम्य मिलाते हुये फिर बोले—

"और गोपी की तो नस-नस ढीली कर दूँगा। पास में दो बीघा जमीन है, तो समझता है कि जैसे कहीं का राजा है। जगह-जमीन इसकी सब न बिकवा दिया तो मेरा नाम नहीं।"

घुरफेकन जैसे कोई अन्तरंग बात कहना चाहता हो। अपने मुँह को उसने गंभीर बना लिया और बोला—

"चौधरी, एक बात तुमने नहीं सुनी।"

चौधरी ने कहा कुछ नहीं, उसके मुँह की ओर देखने लगे।

घुरफेकन—"सुना है कि अपनी भावज से गोपी की साँठ गाँठ चल रही है। उससे व्याह करेगा।"

चौधरी तनिक आश्चर्य में डूब गये: फिर संभल कर उन्होंने कहा—"अच्छा!"

दलथम्भन चौधरी जब मुंशी जयकिशनलाल के यहाँ पहुँचे तो वे अपने दरवाजे पर चारपाई पर बैठे हुए मिले। साफ मालूम हो रहा था

कि अभी वे कहीं से आये थे। उनके बदन पर खद्दर का कुरता, खद्दर की धोती थी। गाँधी टोपी उतार कर चारपाई के सिरहाने रख ली थी। चेहरे पर कुछ थकावट के निशान थे। पसीने की बूँदें उनके माथे पर चुचा रही थीं। उनके प्रशस्त, गोरे ललाट पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें ऐसी मालूम दे रही थीं मानो संगमरमर पर ओस के नन्हें-नन्हें कण बिखरे हों।

बैठक से थोड़ी दूर हट कर मुंशी जी का बैलों के बांधने का स्थान था। पक्की नाद पर छ बैल बँधे हुये थे, हट्टे-कट्टे, नगड़े। उनमें से कोई चार दांत का रहा होगा, कोई छ दांत का। मनुष से पार कोई नहीं रहा होगा। बैल खूँटे पर बँधे मकोला खा रहे थे। भूसे में चने का आटा, खेसारी की दाल और कड़ुई खरी थोड़े से पानी के साथ मल दी गयी थी, जिससे वह भूसा राब में सने सत्तू सा लसीला-लसीला हो गया था। बैल बड़े चोप से उसे खा रहे थे। खाते-खाते जब कभी उनकी नाक में भूसी की कनी समा जाती थी तो फूं-फूं कर के उसे निकाल देते थे। अपने सर को झाँट कर, कन्धे पर आ बैठने वाली मक्खियों को हटाने का जब प्रयत्न करते थे, तब उनके गले को घंटी टुन-टुन, टुन-टुन के स्वर में बज उठती थी जैसे कोई दो-तीन वर्ष का बच्चा घुँघरू की करधनी पहने हो और जब वेग बढ़ाना हो तो वह करधनी बज उठती हो।

पास ही खूँटे पर दो मुर्रा भैंसे बँधी थीं। उनके भरे-गदराये बदन पर तेल की मालिश की गई थी, जिमसे उनके शरीर का कालापन और भी गहरा हो गया था। कालेपन की वह गहराई ऐसी चमक रही थी,

जैसे आबनूस के कुन्दे पर सरसों का तेल मल दिया गया हो। भैंसें सानी खा रही थीं। नाँद में भूसा, पानी, दाना और खली पड़ी हुई थी। अपनी गर्दन गोत कर और कभी-कभी तो अपनी आँखों तक सानी में डुबा कर चभर-चभर वे सानी खा रही थीं। नाद से मुँह उठा कर जब मुँह के कौर को चबा कर निगलने लगतीं थीं, तब सानी का हल्का पीला, मटमैला पानी उनके मुँह से चूता रहता था। नाँद में पानी की उस पतली धार के गिरने से सुर सुर की आवाज़ होती थी जैसे कोई छोटा बच्चा धीरे-धीरे पिपिहरी बजा रहा हो और उसका अस्फुट स्वर गूँज रहा हो।

भैंसों में एक गाभिन थी। उसका थन सूख गया था और पेट की दोनों कोयें निकल रही थीं। दूसरी भैंस दुधारु थी। उसकी पड़िया बगल में बँधी हुई थी। वह काले गधे सी मालूम हो रही थी।

थोड़ी दूर एक गाय भी बंधी हुई थी। मालूम होता था, ग्वाला अभी उसे दुह कर गया है: क्योंकि बछरू अपनी माँ के थन से लग कर दूध पी रहा था। उसकी बड़ी नीली आँखों में एक चमक समाई हुई थी। अपने बदन पर अपनी माँ की जीभ का स्पर्श पा कर वह और भी जैसे प्रफुल्लित हो उठा हो। उसकी माँ उसे चाटती जा रही थी। दूध पीते-पीते बछरू कभी अपने सर को अपनी माँ के थन से हल्का धक्का दे देता था—बछड़े के उस स्पर्श से जैसे उसकी माँ के स्तन में और भी दूध उतर आता हो। उसका रोम-रोम जैसे वात्सल्य से पुलकित हो उठता हो। बछड़े के जबड़े के दोनों कोरों पर दूध की सफेद गाज अटकी हुई थी, जैसे

अबोध बच्चे के मुँह में माँ का दूध लगा हो।

दलथंमन भगत ने जैसे क्षण भर में ही, हृष्ट-पुष्ट बैल, भैंसें, गाय, मुँशी जी का पक्का बैठका सिमेन्ट लगा और उस पर सफेदी की हुई, मकान की दीवार पर इंट की छल्ली, और उस पर पक्की टिपकारी की हुई सभी चीजें आँक लीं। आज ही नहीं सदा ही वे इसे देखते थे; पर जब आते थे, तब उनके ऊपर मुंशी जी की इस आसूदगी का प्रभाव पड़ जाता था। एक तरह का रोब छा जाता था और आज भी उन पर वही बात हुई।

मुंशी जी का एक नौकर चिलम चढ़ा रहा था। मुंशी जी तृप्त और संतुष्ट नजरों से बैलों को देख रहे थे।

तभी दलथम्भन चौधरी ने झुक कर कहा—"सलाम मुंशी जी !"

और फिर और आदर प्रकट करने के ख्याल से पूछा—

"भइया, अभी कहीं से आप आ रहे हैं, ऐसा मालूम होता है !"

मुंशीजी ने दलथम्भन की सलामी का जवाब सर हिलाकर दिया। बोले —

"जरा एक मीटिंग का बन्दोबस्त था, वहीं चला गया था। तुम तो जानते हो मेरी जान को कभी चैन नहीं।"

मुंशी जयकिशनलाल के चेहरे पर आत्म-संतोष की भावना और भी प्रबल हो उठी। उनके बोलने के ढंग से यह स्पष्ट लग रहा था कि उन्हें अपने सौभाग्य पर गर्व है। उनके मन में इस बात का अहसास है कि आज दस गांव में जो मेरी मान-जान है, जो दस आदमी मुझसे दबते

हैं, हर वक्त बाबू-भइया लगाये रहते हैं. वह और किसी को नसीब नहीं। यह तो मुंशी जयकिशनलाल का ही भाग्य है कि अपनी जिन्दगी में वे क्या से क्या हो गये।

दलथभम्न ने महसूस किया कि मुंशी जी अपनी तारीफ कराना चाहते हैं। तारीफ तो खैर वह सदा ही करता रहा है। मुंशीजी की तारीफ करके, उनका अपना आदमी कहा कर, अपनी बिरादरी वालों पर दबाव डाल कर, मुंशीजी को कुछ न कुछ वह सदा ही खिलाता-पिलाता रहा है। और इस समय तो वह जिस काम से आया था, उसके लिये मुंशी जी की चाहे जितनी भी खुशामद-बरामद करनी पड़े, करेगा। मन ही मन उसने सोचा— भाग्य इसको कहते हैं। मुंशीजी की दिन दूनी, रात चौगुनी तरक्की होती जा रही है। मुझसे जब होंगे उमर में पाँच-सात बरस छोटे ही होंगे। स्कूल में दर्जा दो तक तो मैं भी पढ़ा हूँ—और मुंशीजी को मैं साथ ले जाता था—पर भाग्य थे इनके जोरदार। दरजा चार पास तो नहीं कर सके, फिर भी पटवारगिरी के इम्तहान में बैठे। सुनते हैं, वहाँ भी फिसड्डी ही रहे, पर लाला चच्चा (मुंशीजी के पिता) बड़े चालाक थे। काम बना ले जाने में एक नम्बर के थे, सो सुनते हैं उन्होंने सौ-पचास रुपये हाकिम को सुँघाये और लाला पटवारगिरी में बहाल कर लिये गये। फिर मुंशीजी ने अपना वह हुनर दिखलाया कि उसी पटवारगिरी की बदौलत अपनी चार-चार लड़कियों की शादी की, बेटे को अंग्रेजी पढ़ाया, पक्का मकान बनवा लिया, तीन हल के खेत बनाये। नहीं तो, कुल मौरूसी तो इनकी एक हल की भी नहीं थी। फिर पटवारगिरी

से हटे तो भी घाटे का सौदा कहाँ रहा! दरअसल जब कांग्रेस के लिये उन्होंने चन्दा उगाहा था, लोग-बाग कहते हैं कि काफी रकम उन्होंने अपने हाथ लगा ली थी और जब चुनाव में कांग्रेस का काम किया, तब तो लोग कहते हैं कि चार-पाँच हजार की एक मुश्त रकम हाथ लगी और अब पटवारगिरी से कम मान-जान तो इसमें है नहीं। सब कायदा-कानून पहले से ही जानते हैं और यह पक्का मकान भी तो उन्होंने कांग्रेस के पैसे से ही बनवा लिया है। सब अफसरों से जान पहचान हो गयी थी, मर-मुकदमे में काफी बना लेते हैं और इधर इज्जत अलग कि देश का काम कर रहे हैं। पर अपने को इससे क्या! मैंने तो जब किसी काम के लिये कहा, तुरत कर दिया। जहां कोई गाढ़-सकेत आया, मुंशी ने उबार लिया। दिया-लिया काम आता ही है। जितना मैंने इनको दिया है, वह क्या कुछ कम होगा!

ऊपर से उन्होंने कहा—

"भइया, यह क्या कुछ छिपा है। दिन को दिन, न रात को रात बस जब मैं देखता हूं आप किसी न किसी के काम में लगे ही रहते हो। मुदा यह आप ही के दम का जहूरा है कि इतना सपरा लेते हैं। और जो कोई आया उसका काम कर दिया। ठकुर सुहाती नहीं कहता हूँ भइया जी, लेकिन आप ने जो जस कमाया है, वह क्या कुछ कम है। सब लोग तो आपका गुन गाते हैं।"

मुँशी जयकिशनलाल अपनी तारीफ सुनने के अभ्यस्त थे। जब वे पटवारगिरी करते थे, तब भी और अब जब पटवारगिरी से हटने पर ग्राम

सभा के सभापति हो गये हैं, तब भी इस गाँव में कोई भी उनकी बात काटने वाला नहीं रहा। पीठ पीछे चाहे जो भी कहे, पर मुंह पर तो इनके मन की ही कहते हैं।

दलथम्मन चौधरी की बातें सुन कर उन्होंने कहा—

"कैसे चले भगत !"

वैसे तो मुंशी जी दलथम्मन का नाम लेकर ही पुकारते थे, पर जब खुश रहते थे या बहुत मौज में हुए, कोई सफलता प्राप्त की हो या दलथम्मन के जरिये कुछ फायदा हुआ रहे, या तत्कात फायदे की कोई बात रहे, तो कभी उसे भगत, कभी चौधरी कह कर पुकारते हैं। उनकी यह नीति प्रायः सभी के साथ समान थी। जब अपना काम बनाना रहा या जब कोई उनकी तारीफ करे तो वे उसका भी आदर करते थे।

दलथम्मन चौधरी ने तनिक खीस निपोर कर कहा—

"वैसे ही चला आया भैया, मुदा आप राजा रईस ठहरे। आप की संगत करके कुछ गुन-सऊर सीखेंगे।"

तब तक मुंशी जी के एक नौकर ने तम्बाकू चढ़ा कर फरसी मुंशी जी के हाथ में थमा दी थी। मुंशी जी नारियल का हुक्का नहीं पीते थे। हुक्का तो हर कोई खरीद लेता है, सबके जैसा वे भी चलें, तो फिर कहाँ रहा उनका बड़प्पन ! इसीलिये वे फर्शी पीते थे, कलई किया हुआ गड़गड़ा, निगाली। देखने वाले चकित रह जाते थे। पर-पाहुन आते थे, तो मुंशी जी फ़र्शी और सटक निकलवाते थे। सटक की लम्बी, लचकदार निगाली देखने के लिये गाँव के छोटे-छोटे लड़के इकट्ठे हो

जाते थे। हसरत भरी निगाहों से देखते थे कि कितना परताप है लाला साहब का।

मुंशी जी चार-छः कश तम्बाकू खींच चुके तो चिलम उतार कर दलथम्भन चौधरी की ओर बढ़ा दिया। दलथम्भन ने च च कर के कहा—

"ना ना भइया, हम भला आपकी चिलम पीयेंगे!"

मुंशी जी ने बेतकल्लुफी से कहा—

"लो पीओ, मैं तो इसका विचार नहीं रखता।"

दलथम्भन ने उठ कर चिलम थाम्ह लिया। अपनी हथेलियों के बीच में चिलम को पकड़ कर उसका चोंगा बना कर तम्बाकू पिया। और फिर उठ कर मुंशी जी की ओर बढ़ा दिया।

मुन्शी जयकिशन लाल फिर फर्शी गुड़गुड़ाने लगे। दलथम्भन कुछ देर तक जैसे हैस-बैस में रहा। फिर बोला—

'रूपा बड़ा मगरूर होता जा रहा है भइया!"

रूपा मुंशी जी का हल जोतता था। और जो दो हलवाहे थे, वह कई वर्षों से मुंशी जी का काम करते आ रहे थे। पर रूपा ने साल भर से मुंशी जी का काम थाम्हा था। काम करने में बड़ा मेहनती था; पर मुंशी जी को महसूस होता था कि अन्य हलवाहों से वह जैसे कुछ भिन्न हो। काम तो बड़ी चुस्ती से करता, पर जैसे अन्य हलवाहे काम के साथ-साथ अपने मालिक की चापलूसी करते जाते हैं कि दो मुट्ठी अधिक मिल जायगा, यह बात रूपा में नहीं थी।

दलथम्भन की बात सुनकर मुंशी जयकिशन लाल ने जैसे कुछ चौंक कर दलथम्भन की ओर देखा। बोले कुछ नहीं, किन्तु उनकी मुखाकृति पर औत्सुक्य साफ झलक रहा था।

दलथम्भन ने आगे कहा—

"भइया, आपको तो मालूम है न कि उसने पड़ोस के गाँव से एक मेहर लाकर रख ली है। उसका न तो उसने बयेसी दिया, न बिरादरी को भोज-भात दिया, न पंचायती में कुछ जुर्माना दिया। एक दिन हमने उस पर कुछ सख्ती की तो गोपी ने एक हंगामा खड़ा कर दिया। फिर रूपा और गोपी तथा दो-चार और लौंडे-लबाड़े लगे जबानदराजी करने, वाही-तवाही बकने। वह सब तो आपने सुना ही होगा।"

इतना कह कर वह क्षण भर चुप रह गया। मुंशी जी की ओर उसने गौर से देखा, जैसे वह सोचता हो, आगे की बात वह किस रूप में कहे। बोला—

"इन लौंडों का दिमाग़ तो ठिकाने लाना ही पड़ेगा। मुदा अपनी ओर से बिरादरी से हम उन्हें खारिज़ करेंगे ही; कुछ मदद आपकी भी हम चाहते हैं। फिर तो उनकी नस-नस ढीली कर के रख दूँगा।"

रूपा का नाम सुन कर मुंशी जी का ध्यान उसकी स्त्री सुगनी की ओर चला गया। उसकी सूरत उनकी आँखों में उभर आई। हलका साँवला रंग, गोल मुँह, आँखें जैसे हर वक्त कोई सवाल कर रही हों, और उमर अभी क्या होगी! आँखों में खुब सी जाती है। चलती है तो गठा हुआ अंग-अंग जैसे कसक रहा हो, और कम्बख्त है भी कितनी नखरे

वाली। नई बछेड़ी की तरह पुट्ठे पर हाथ ही नहीं रखने देती !

मुंशीजी ने जब से सुगनी को देखा था, वह उनकी आँखों में चढ़ गई थी। अभी चैत में ही तो रूपा के यहाँ आई है। उनके खेत में जौ, मटर, चना काटने गई थी और भी कितनी ही मजदूरिनें थीं, पर उनमें वह अलग ही दिखती थी। हजार में एक लगती थी। मेड़ पर खड़े-खड़े खेत कटवाते समय मुंशी जी एकटक उसी की ओर देखते रह जाते थे। उसके गठीले, गदराये अंगों पर छींट की कसी अधबहियाँ जैसे उसके रूप को और भी निखार देती थी, जैसे उसका यौवन बाहर निकलने के लिये मचल रहा हो और अधबहियाँ उसे जबरन आलिंगन-पाश में बाँधे हो कि हमें छोड़कर कहाँ जाती हो। एक हाथ से जब जौ अथवा गेहूँ के पौधों को पकड़ कर, दूसरा हाथ बढ़ा कर हँसिया चलाती थी, तो उसका सारा शरीर हौले हौले हिल जाता था। उसके श्यामल मुख पर चुचाती हुई पसीने की बूँदें, हवा के हलके झोंके से उसके मुँह पर बिखर बिखर जाने वाली लटें, उसकी आँखों की मस्ती भरी चमक और हाथों की हरकत से, अधबहियाँ में कसे हुए उभरे स्तन का धीरे-धीरे ऊपर नीचे होना: मुंशी जी का मन जैसे बे-काबू हो जाता था। अपनी सुध-बुध बिसार कर वे देखते रह जाते थे। उनके मन में प्रबल आकांक्षा उठती थी कि उसे पकड़ कर अपनी बाहों में भर लें।

मुंशी जी ही क्या, उन जैसे खाते-कमाते बड़ी जातियोंके प्रायः सभी गृहस्थ—ब्राह्मण, छत्री, कायस्थ वगैरह अपने यहाँ काम करने वाली नान्ह कौम की औरतों के साथ मौके बे-मौके छेड़खानी कर बैठते थे। कभी

कुछ दे-ले कर, कभी किसी दाँव-पेंच में पा कर उनके साथ अपनी वासना तृप्त कर लेते थे। उनकी नजरों में उनकी इज्जत का कोई महत्व था ही नहीं। 'भला नान्ह कौम की औरतों की भी कोई इज्जत है, सौ घाट का पानी पीती हैं!' उनके बँधे हुए उत्तर होते।

बन्नी निबरवाते[1] समय मुंशी जी ने अपने हाथ से उठा कर सुगनी को कुछ अधिक डाँठ[2] दे दिया था। माने-माने उन्होंने जना देना चाहा था कि मैं तुम्हारे साथ अपनेपन का भाव रखता हूँ। एक-आध बार उसे अन्य लोगों से कुछ दूर पा कर उन्होंने बोली-ठिठोली भी की थी, पर उस बोली-ठिठोली से सुगनी के ओठों पर न तो मुस्कराहट आई थी, न उसकी आँखों में चञ्चलता ही आई थी, न उसके बदन में हलका कम्पन ही हुआ था, बल्कि उसका मुँह गम्भीर हो गया था, उसकी आँखों में रोष उमड़ आया था और उपेक्षा से हट कर वह परे हो गई थी।

किन्तु मुंशी जी के मन में यह बात थी कि मेरे यहाँ रूपा काम पर रहेगा तो एक न एक दिन यह चंगुल में फँसेगी ही। आखिर बन का गीदड़ जायगा किधर!'

मुंशी जी यही सब सोच रहे थे कि तब तक दलथम्भन ने कहा—

"भइया, उसकी जगह दूसरा आदमी आपको दे देते हैं। उसे रख लीजिये और इस रूपा को लात मार कर निकाल दीजिये। आपके काम

१—फसल काटने की मजदूरी, जो कि काटे हुए बोझ के हिसाब से होती है। प्रायः १६ बोझ काटने पर मजदूरी में एक बोझ दिया जाता है। २—नरई।

का हरज हरगिज़ नहीं होगा। हमारे रहते कभी आपको मजदूरों-बनिहारों की कोई कमी नहीं पड़ेगी। आपका इकबाल ही ऐसा है कि एक को छोड़ेंगे और दस दौड़े हुए हाजिर हो जायेंगे। अदल मजदूरी आप देते हैं, बल्कि जो आप अपने मजदूरों-बनिहारों को दे देते हैं, वह भला और कोई क्या देगा! फिर आपको मजदूरों की कमी पड़ेगी!"

मुंशी जयकिशन ने दलथम्मन की बातें सुन कर जैसे सतर्क होकर कहा—

"काम पर से हटाने की क्या बात! जब कहो, उसे दुरुस्त कर देता हूँ। मजाल कि कहना न माने!"

किन्तु मुंशी जी के मन में लगा कि मुगनी को अपने कब्जे में करने का एक अस्त्र उनके हाथ लग गया है!

卐

६

आसाढ़[1] की पहली बारिस हो चुकी थी। जेठ की प्यासी धरती पर वर्षा का पहला पानी इस तरह पड़ा जैसे दम घुट कर मर रहे रोगी को आक्सीजन वायु मिल जाय। सारी धरती हरी-हरी घासों की मखमली चादर ओढ़ कर जुड़ा उठी, मानों धरती ने बादलों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये हरी घासों के मिस अपने हृदय का उद्गार प्रकट किया हो। हरी-हरी घासों के बीच से रेंगती हुई लाल-लाल बीर-बहूटियाँ, मानो धरती के हरित मखमली आँचल पर टँकी हुई लाल फूल हों, जिसे चतुर गृहणी ने अपने हाथों से कसीदा काढ़ा हो। उन लाल-लाल बीर-बहूटियों की मखमली पीठ ऐसी कोमल और लुभावनी थी जैसे किसी नवजात शिशु की गुलाबी हथेलियाँ हों—मुलायम, नर्म, लाल और दिल

१ आषाढ़।

को ठंडक पहुँचाने वाली !

उन घासों के बीच से केचुये अपने लम्बे गिलगिले शरीर को सिको-ड़ते-घसीटते आगे बढ़ रहे थे। उनमें किसी का शरीर भूरा था, किसी का मटमैला गाढ़ा-हरा और जो बिल्कुल बच्चे थे उनका रङ्ग कनखजुरे की तरह लाल था। उनका अपने शरीर को सिकोड़ कर सरकना बहुत भला लगता था। रबर के फीते की तरह लचीला पतला शरीर ! अपने प्रयास से वह धरती की सीमा लाँघ देने का कठिन उपक्रम कर रहे थे !

पतंगे उछल-कूद कर रहे थे। हरी घास की पत्तियों में वे जैसे छिप जाते थे, पर जहाँ बैठते थे वहाँ घास की पत्ती खखनी[1] हो जाती थी जैसे पीपल का पत्ता पानी में सड़ जाय, पर उसका जाला बना रहे: इसी तरह पतंगों के खा लेने से घासों की पत्तियाँ नंगी मालूम हो रही थीं। इस स्फूर्ति से वे पतंगे उड़-उड़ कर एक जगह से दूसरी जगह पर बैठ रहे थे कि उनके उछलने-बैठने की पट-पट की आवाज से भ्रम हो जाता था कि जैसे बरसा की तेज बूँदें पेड़ों के पत्तों पर गिर रही हों।

कौवे उन पतंगों को पकड़-पकड़ कर खा रहे थे। उनकी मुलायम देह में जब अपनी चोंच गड़ाते थे तो मुलायम गूदे से जैसे उनकी काया तृप्त हो जाती थी। उस सुस्वादु भोजन से जैसे उनका तन-मन तृप्त हो जाता हो, उनकी काली गोल आँखों की चमक और भी बढ़ जाती थी। उनके काले-काले पंख इस तरह चमक रहे थे मानो काले बूट पर किसी

१ — बिरल।

होशियार पालिश करने वाले ने रच कर कोबरा पालिश की हो।

भुजंगे भी कौवों का साथ दे रहे थे। लपक-लपक कर पतङ्गों को पकड़ कर खा रहे थे, मानो किसी जजमान ने उन्हें इच्छा-भोजन का निमन्त्रण दे रखा हो।

गौरैया छोटे-छोटे पतङ्गों को अपनी नन्हीं-नन्हीं चोंचों से पकड़ कर झपट देती थी और जब तक पतंगे फड़फड़ायें कि तब तक उनको अपनी चोंच से फिर पकड़ कर झटक देती थी। इस तरह दो-चार झटके में पतङ्गों के पंख उखड़ जाते थे और उनका पंख-हीन बेबस नन्हा-सा शरीर धरती पर पड़ा छटपटा कर रह जाता था और फिर उसे उठा कर गौरैया निगल जाती थी!

कोई कोई कौवे खेतों की मेड़ों पर बैठे काँव-काँव कर रहे थे, अभी पतंगों का इच्छा-भोजन जो उन्होंने किया था, उससे मानो वे परम संतुष्ट हो रहे हों और उसके बाद जैसे अपने हृदय का उल्लास प्रकट करने के लिये वे स्वान्तः सुखाय गा रहे हों।

किसानों ने खेतों में बीया के लिये धान छींट रखा था। वे बढ़ कर एक-एक बित्ता हो रहे थे, लगता था खेतों ने रोयेदार मखमल का दुकूल ओढ़ रखा हो।

कहीं सावां, कहीं ज्वार, सन, उड़द, मूँग, क्वारी और कतिकी धान आदि उग रहे थे। सारी धरती जैसे आज अपने अन्तर का स्नेह उड़ेल रही हो, जैसे जेठ के आततायी शासन के हटते ही उसने अपना सारा वैभव, अपनी सन्तानों के लिये बिखेर कर रख दिया हो।

दो दिनों से लगातार थोड़ी बहुत बारिस हो रही थी, जिससे जमीन गीली-गीली हो गयी थी। चैती वाले खेतों में हल चलाने की गुंजाइश नहीं थी। मिट्टी जरा भुरभुरी हो तो पैर न धँसे, तब खेत में हल चले। इससे गृहस्थ और उनके हलवाहे दूसरे कामों में लग गये थे। कोई घास छील रहा था, कोई बैलों को चरा रहा था। कोई सन की रस्सी तैयार कर रहा था। कोई सुतली कात रहा था या कहीं अपनी-अपनी जोड़ के दस-पाँच आदमी इकट्ठे होकर गप्पें मार रहे थे। वे चिलम पर चिलम फूँक रहे थे। कोई जरा और शौकीन हुआ तो दो-चार आने का जुगाड़ कर लिया और कभी-कभार गाँजे की दम लग जाती थी। किन्तु तम्बाकू और कंकड़ के साथ वही उलझे थे, जो जवानी की सीमा लाँघ कर बुढ़ापे की सीमा में पहुँच गये थे। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ उनके गले की खों-खों भी गूंजती रहती थी। उनके खँखारने की आवाज ऐसी मालूम हो रही थी जैसे कोई कद्दूकश पर कद्दू रगड़ रहा हो। उनकी बातचीत का सिलसिला जमाने की खराबी और अपनी बहू-बेटों की शिकायतों पर टूटती। चाहे किसी भी जाति के हों, किसी भी सामाजिक स्थिति के हों, पर उन सभी की बातों का ढर्रा करीब-करीब एक-सा ही होता।

प्रौढ़ों और जवानों की बैठक इन बड़े-बूढ़ों से बच कर होती, जहाँ इन बूढ़ों की छाया भी न पहुँचे। उनकी नजरों में बूढ़ों से बढ़ कर रंग में भंग करने वाला और कोई नहीं था। वैसे बूढ़ों की नजरों में ये जवान और प्रौढ़ भी एकदम निखट्टू थे, जिन्हें किसी बात का शऊर

नहीं, किसी बात का ढंग नहीं, जिनका कोई सलीका नहीं। बस बात बात में खीस निकाल देना, दाँत निपोर कर ही-ही कर देना। बस यही एक ढङ्ग था!

प्रौढ़ और जवान भी अपने अपने मन-चाहे साथियों के साथ अलग अलग चौपालों में जमे बैठे थे। खास कर जवानों की बातचीत का ढङ्ग बिल्कुल निराला था। कभी ठठाकर हँस पड़ना, कभी एक दूसरे पर फब्ती कस कर मुस्करा देना, कभी किसी से इशारों ही इशारे में अपने किसी साथी की कोई रहस्य की बात कह देना और फिर ओठों के कोरों में जरा मुसकरा पड़ना। पास वाले साथी को जैसे शुबहा हो जाय, 'मेरी ओर देख कर ही तो ये मुस्करा पड़े हैं! जरूर कोई बात है! ऐसा तो नहीं कि मेरे किसी रहस्य को जानते हों। हाँ उस दिन जो उसके साथ बात करते देख लिया था!—और वह कुछ सतर्क-सा हो उठता था।

किन्तु बातों के साथ कहीं-कहीं मृदंग और झाँझों के सम्मिलित स्वर के साथ वातावरण गूँज रहा था—

आगे चले बहुरि रघुराई, रामा हो रामा ऽ।
रिष्यमूक पर्वत नियराई, रामा हो रामा ऽ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा, रामा हो रामा ऽ।
आवत देखि महाबल सींवा; रामा हो रामा ऽ॥

और मृदंग के मादक स्वर और झाँझ की झनकार के साथ उनका स्वर गूँज उठता। जैसे-जैसे चौपाई पर चौपाई समाप्त हो कर दोहे के पास

पहुँचती जाती, वैसे वैसे मृदङ्ग, झाँझ और गायकों का स्वर ऊँचा होता जाता और दोहे तक पहुँचते पहुँचते तो ऐसा लगता जैसे उनका बँधा हुआ स्वर मूर्त होकर धरती से आकाश तक एक कड़ी जोड़ देगा। उस स्वर के माध्यम से जैसे धरती और आकाश की दूरी मिट जायगी, जैसे धरती और आकाश को जोड़ने वाली मानव-हृदय से निकली भावों की सजीव कड़ी हो।

यह बात नहीं कि सभी नौजवान रामायण और महाभारत के ही साथ उलझे थे। उनमें जो कुछ सैलानी थे, जिनके हाथ हर वक्त अपनी मूछों पर ही फिरते रहते थे, जिनकी चाल में एक अकड़ थी, एक फक्कड़पन था, एक लापरवाही थी, उनका रंग-ढंग कुछ दूसरा ही था। निराले में दस-पाँच साथियों के साथ जम रहे थे। उनमें किसी एक के हाथ में ढोलक रहती और ढोलक की थाप के साथ उनका गरजता स्वर आल्हे के रूप में फूट उठता—

"याँ की बात तो याँ ही छाँड़ो अब आगे का सुनो हवाल।
पैंदल के सँग पैदल भिड़ गये, औ असवारन से असवार।
खट खट खट खट तेगा बाजे, बोले छपकि छपकि तलवार।
चले दुनब्बी और तिनब्बी, ऊना चले विलायत क्यार।
छप छप छप छप चले सिरोही, बहि बहि चली रक्त कै धार।
मुन्डन के तँह मुँड चौरा[1] भये, औ रुंडन के लगे पहार।
झुके सिपाही नैनागढ़ के, दोनों हाथ करें तलवार।

१ —चबूतरा।

जोगा भोगा के मोहरा पर, कोई बीर न आड़े पाँव।
तबही ऊदल बोलन लागे, बीरो सावधान हुई जाव।
मानुष देही यहि दुनियाँ में, आगे मिले न बारम्बार।
एक दिन मरना सब काहू को, कोई आज मरे कोई काल।
जो मरि जैहैं रन खेतन में, कीरति चली अगारी जाय।
खटिया परि कै जो मरि जैहैं, तिन कर कोउ न लैहैं नाम॥

ढोलक की थाप और ललकार से जैसे सारा ब्रह्मांड ताल दे रहा हो। रह-रह कर जवानों के हाथ कभी अपनी मूँछों पर जाते थे, कभी अपने पुट्ठों पर और कभी जमीन पर ही जोर से एक थापी लगा देते; जैसे अपनी थापी से धरती को दो अंगुल नीचे की ओर धसका देना चाहते हों।

कहीं पर दूसरी ही टोली जमा हुई है। वहाँ या तो विजयमल चल रहा है या फिर मचिया पर बैठा हुआ, अपने एक हाथ को कान पर रखे कोई नयकवा की तान छेड़ रहा है—

राम जी रामै रमवाहोले, सुमिरिनियाँ हो नाऽ।
जिन कर गुरूअ बाबा लावैं बेड़वा परवा हो नाऽ॥
जिनकर दूरूगै मइया लावैं बेड़वा परवा हो नाऽ।
निचवाँ सोहें धरती मइया, उपराँ अकसवा हो नाऽ॥

और तेलियों और बनजारों के नायक की कथा आगे बढ़ जाती, जिसने अपने धन से, अपने बाहुबल से, तेग और तलवार से, बड़े-बड़े रज-वाड़ों को नाकों चने चबवा दिये थे, जिन्होंने अपने धन और ऐश्वर्य से

धरती पर इन्द्र का सुख भोगा, जिनके लक्खी-बनजारे उस समय व्यापार की रीढ़ बने हुए थे।

एक तरफ सिवान में किसी पेड़ के नीचे चरवाहे विरहे की तान छेड़ रहे हैं। उनकी उँगली उनके कानों में पड़ी है। कन्धे पर लाठी टिकी है और कभी बिहारी और कभी अमर गायक बिसराम के विरहे फूट पड़ते हैं।

आज मोरी घरनी निकरलीं मोरे घर से
मोरा फाटि गइलै आल्हर करेज,
'राम नाम सत हो' सुनि मैं गइलों बउराई
कवन रछसवा गइलै रानी के हो खाई
सुखि गइलै आंसू, नाहिं खुलैले जबनिया
कइसे कै निकारौ मैं तो दुखिया बचनिया
आजु उनसे नाता टूटि गइलै मोरे भइया
आजु मोरी छुटि गइलीं उनसे सगइया
मोरी अँखियन से उनकर चिता धुंधुंअइलीं
चितवा से सोवल रानी राखी होइ गइलीं
कहै 'बिसराम' नाहीं धनी रहलीं राम
रहलै चारि जना के परिवार।
ओही में से घात एक ठे कइले पापी दैवा,
नाहीं कइलैं मोरे गरीबी पर विचार॥

विरहे की करुण रागिनी से पेड़-पौधे, सारी फसल जैसे सर धुन-धुन

कर पछता रही हो, हवा की लहरियाँ जैसे उस चिर विरही बिसराम के दुख से दुखी काँप काँप उठती हों और गायक जैसे गीत समाप्त कर दुख में डूब जाता है। कुछ क्षण तक वह उसी तरह खोया खोया रह जाता है।

किशोर और कुछ कम उम्र वाले बच्चे कहीं गोली खेल रहे हैं। कहीं कौड़ी खेल रहे हैं। कभी और कोई दूसरा खेल। कुछ बंशी लेकर तालाब और गड़हियों में मछलियाँ फँसाते हैं।

घरों के भीतर रहनेवाली औरतें भी बरसात के मौसम में काम-धाम निपटा कर एक जगह बैठ जाती हैं। बुढ़ियों का दल अलग, जवान स्त्रियों और लड़कियों का दल अलग। छोटी किशोरियाँ अपनी गुड्डियों-गुड्डे से उलझ जाती हैं।

बुढ़ियाँ एकत्र होकर अपनी हुक्कियाँ गुड़गुड़ाती रहती हैं। खाँसती खखारती हैं। अपने बेटों पतोहों की निन्दा करती हैं। 'उनके समय की बहुएँ कैसी सीधी थीं, सास के सामने कैसे थर थर काँपती रहती थीं, कैसे उनकी सारी उमर बीत जाती थी, पर अपने पति से किसी के सामने बात तक नहीं कर पाती थीं। पाँच-पाँच सात-सात बच्चे हो जाते थे और क्या मजाल कि बिना हाथ भर का घूँघट काढ़े आंगन तक में आ जांय। उनके मुँह में तो जबान जैसे हो ही नहीं, क्या मजाल कि किसी ने कभी उनकी आवाज सुन ली हो और एक अब की बहुएँ हैं, अगर बेचारी सासें तरह न दे जाँय तो ये खदग्गर बहुएं उनका सर फोड़ कर रख दें। उनका झोंटा खींच कर आंगन भर ठिठराती फिरें। अपने

खसमों से हर वक्त फुस-फुस करती रहती हैं, न लाज न शरम। सब हया जैसे धो कर पी गई हों। चलेंगी तो अँचरा उलट कर फेंक देंगी। कोई आये, कोई जाये न जरा अदब, न कायदा। बात करेंगी तो जैसे ढोल पीट रही हों और मुँह में तो जैसे उनके लगाम ही न हो। हर वक्त अपने मरद और लड़कों, बच्चों में भूली रहती हैं। उनको खिला पिला देंगी और फिर आन के मन से सास-ससुर के सामने रूखी-सूखी परोस देंगा और जरा भी बोलो, तो जैसे काट खायेंगी ; ऐसी हैं आजकल की बहुएँ।

इसी तरह की बातें फुरसत में चलती रहतीं। हुक्के की गुड़गुड़ाहट होती रहती। खाँसने-खखारने की आवाज होती रहती और जब इससे मन भर जाता तो बीच बीच में एक आध भजन गूँज उठता—

रामहि राम रटन लागी जिभिया हो……रामहि राम।
अँखिया कहै हम दरसन करबय राम,
कनवा कहै हम सुनबय पुरान, रटन लागी जिभिया।
रामहि राम……।
गोड़वा कहै हम तीरथ करबय राम,
हथवा कहै हम देबय दान, रटन लागी जिभिया।
रामहि राम रटन लागी जिभिया हो।
रामहि राम……।

और तब उन बूढ़े मुँहों पर एक स्निग्धता छा जाती। उनके झुर्रीदार चेहरे पर पवित्रता और सारी दुनिया के प्रति जैसे ममता का भाव

आ जाता। उनका हृदय आत्म-सन्तुष्टि की भावना से तृप्त हो जाता।

बहुओं और उनकी जवान ननदों की अलग ही मजलिस बैठती। उस मजलिस में हर वक्त खिल खिल का स्वर गूँजता रहता। कभी आपस में छेड़खानी, हँसी-ठठोली, चिकोटी और फिर खिल खिल और कोई शरारती ननद अपनी विरहिनी भावज से छेड़खानी करती है। उसका पति परदेश गया है। भावज अकेली है और ननद उसे चिढ़ाने के लिए अपने सुरीले कंठ से अलाप रही है :--

मचियाँ बइठल धनि[1] मन मन समुझैलीं[2],
भुइयाँ लोटैले लामी केस रे बिदेशिया!
गवना करवलें सइयां घर बइठउलें से,
अपने लुभइलें परदेस रे बिदेसिया!

और अपने दोनों हाथों से पकड़ कर अपनी विरहिनी भाभी का मुँह चूम लेती है और खिलखिला कर हँस पड़ती है। उसकी आँखों में शरारत जैसे नाच रही हो और उसकी इस फबती पर उसकी भाभी की भौहों में और भी बांकपन आ जाता है। उसकी आँखों में तिरछापन और भी बढ़ जाता है। उसके ओठ जैसे मुसकराहट रोकने के प्रयत्न में और भी खिंचते जा रहे हों और बनावटी गुस्से में कहती है—

"चलो, हटो!"

और तब उसकी ननद अपनी भाभी को अंक में भर लेती है। दोनों एक क्षण तक एक दूसरे की आंखों में देखती हैं और फिर खिलखिला

1—स्त्री, २—सोचती है।

कर दोनों साथ ही हँस पड़ती हैं।

पुरवैया हवा और वर्षा की हल्की फुहारें जैसे मचल मचल कर यह नजारा देख रही हों। वे जैसे झूम झूम उठती हों, जैसे स्वर्गोपमसुख देख कर वह इस आनन्द का उपभोग करके निहाल हो हो जाती हों। अपना तन मन बिसार देती हों और उनका आँचल फरफराकर मानों कहती हों—

"बहना, मैं भी तुम्हारी सखी हूँ!"

卐

७

रूपा, मुंशी जयकिशन के बीयड़[१] की सोहनी [२]कर रहा था। उनके दोनों हलवाहे तथा और बनिहार दूसरे खेतों में सोहनी कर रहे थे। रूपा जिस खेत में सोहनी कर रहा था, वह दो बिस्से का छोटा सा टपरा था। इसीलिए अकेले यहां आया था और दूसरे खेतों में काम दूसरे लोग कर रहे थे।

मुंशी जी का यह बीयड़ का खेत धनखर[३] के पास पड़ता था। पानी बरस जाने से घनखर में हल चलाकर जमीन समतल कर ली गयी थी, किन्तु अभी धान के बीये बहुत छोटे छोटे थे जो बहुत पहले के बोये गये थे। वे बित्ता भर के आस पास आ रहे थे, नहीं तो अभी कोई चार अंगुल

१—जिस खेत में रोपने के लिये धान की बेहन बोयी गई हो।

२—घास वगैरह निकालना। ३—धान वाले खेत।

कोई छः अंगुल का ही हो पाया था।

घुटने तक धोती काछे, झुका हुआ रूपा खेत में साँई[1] 'मोथा[2] आदि घासें उपार रहा था; ताकि धान के बीये को बढ़ने-पनपने का अच्छा मौका मिले, नहीं तो घासों की जकड़ में धान के पौधे कमज़ोर पड़ जायेंगे। घासों को उखाड़ उखाड़ कर दाहिने हाथ से बाँयें हाथ में रखता जाता था और जब बाँयें हाथ की मुट्ठी अच्छी तरह भर जाती थी, तब खेत के बाहर जाकर डाँड़ पर उसे रख आता था। उसके हाथों में पड़ी हरी हरी घासें ऐसी मालूम हो रही थीं, जैसे बछड़े ने भर मुँह घास उठा लिया हो और उसके जबड़े के दोनों ओर वे दिखाई दे रही हों। डाँड़ की जमीन भी हरी घासों से हरी हो उठी थी। उस हरे आँचल पर हरी हरी घासों के छोटे-छोटे ढेर ऐसे लगते थे, जैसे तालाब के नीले जल में छोटी-छोटी लहरें उठ रही हों। या बरगद के घने छाये छतराये छते के ऊपर कोई नन्हीं टहनी ऊपर उठ कर झाँक रही हो।

उस खेत के पास ही डाँड़ पर चेखुर और परताप बैठे घास छील रहे थे। चकती घास खुरपी से छील छील कर ढेर लगाये जा रहे थे, वे ढेर ऐसे मालूम होते थे जैसे छोटी छोटी झाड़ियाँ हों जो गुम्बजनुमा मालूम पड़ रही हों। आपस में वे बातें करते जा रहे थे।

थोड़ी थोड़ी दूर पर खेतों में मजदूर, बनिहार और गृहस्थ काम कर रहे थे। खेतों से हटकर या जिन खेतों में कोई फसल नहीं बोई गयी थी, उनमें चरवाहे गायें, भैंसे, बैल वगैरह चरा रहे थे। उन चरते हुए

१, २ —एक तरह की घास।

पशुओं में कभी कोई पाड़ी[1] या बछड़ा वगैरह चरते चरते जब अपने गिरोह से बिछुड़ जाते थे, तब एकाएक सर उठाकर, कान खड़े करके अपनी आँखों में एक जिज्ञासा का भाव भर कर, गिरोह की ओर कुछ क्षणों तक देखने लगते थे और फिर बांय बांय चिल्लाने लगते, जैसे अपनी माँ से शिकायत कर रहे हों— हमें अकेले क्यों यहां छोड़ दिया !

फिर अपनी पूँछ को सीधी फटकार कर चौकड़ी भर कर गिरोह की ओर दौड़ पड़ता और उससे मिल जाता और अपनी मां के देह से अपनी देह रगड़ने लगता। मां क्षण भर के लिये चरना छोड़ कर अपने मुँह से उसका तन चाटने लगती, उसके माथे को चाटने लगती। नरम नरम रोयें, उसके चाटने से ऐसे चिकने और संवर जाते, जैसे किसी चतुर मां ने अपनी बेटी के केश सँवारे हों या होशियार धोबी ने कपड़े साफ करके उस पर ईस्तरी किया हो।

गोपी भी अपने दोनों बैलों को चराने के लिये ले आया था। उसने दूर से ही देख लिया था कि रूपा खेत में सोहनी कर रहा है। मेंड़ पर चेखुर और परपाप भी उसे नजर आये। अपने इन दोस्तों को देख कर उसका मन ललचा उठा उनसे बातें करने के लिये ! साथ ही, इधर जो उनके खिलाफ बातें हो रही थीं, उनके खिलाफ चौधरी और उनके दोस्त तथा उसी टाइप के लोग जो वातावरण तैयार कर रहे थे, उस सम्बन्ध में उसकी विचार विमर्श करने की इच्छा थी।

अपने साथ ही चराते हुए एक छोटे लड़के से स्नेह पूर्वक कहा—

१—भैंस का मादा बच्चा।

"रघुआ, जरा मेरे बैलों को भी सँभालना। एक फूंक चिल्म पी कर आता हूं।"

लड़के ने एतराज किया—

"नहीं भइया, तुम्हारा सोकना[1] तो मारता है। किसी के खेत-खेत में पड़ जायेगा तो मुझसे तो हाँका नहीं जायगा।"

गोपी—"अरे नहीं रे, मरकहा[2] नहीं है, वह, बस वैसे ही मूँडी झाँटता है।"

और फिर उसने लड़के को समझाते हुए कहा—

"मैं कोई देर थोड़े ही करूंगा। बस दो फूक मार कर अभी आया। और हां, जब तुमसे न समरे तो मुझे पुकारना। मैं कोई दूर थोड़े ही जा रहा हूं। बस, लाला वाले बीयड़ पर हूँ।"

लड़का निश्चिन्त नहीं हुआ था। उसके मन में भय समाया हुआ था कि जहां गोपी भैया के सोकना के पास गया नहीं, कि वह उठा कर फेंक देगा। बाप रे, कैसे नोकीले सीग हैं उसके, भाले की तरह। और हर वक्त फूँ फूँ करता रहता है।

पर उसने गोपी की बात को मौन रह कर मंजूर कर लिया। उसे याद आया—'गोपी भैया उसको मानता है। कभी आम, कभी जामुन, कभी बड़हल दे देता है। और वह ताड़ का फल कैसे उसने तोड़ा था। पैरों में रस्सी का फंदा डाल कर, अंकवार[3] में पेड़ को पकड़ कर सर सर सरकता हुआ ऊपर चढ़ गया था और पके हुए ताड़ों को तोड़ कर गिरा

१—हलके काले रंग का बैल, २—मारने वाला, ३—अंक।

दिया था। फिर उसी तरह सरकता हुआ उतर आया था। दो-दो ढाई सेर के फल, उसके ऊपर काला रेशेदार छिलका, जैसे सतरंजी हो और फिर उन्हें उचाड़ कर तार के खुज्झे में लकड़ी डालकर, पेर कर कैसा गूदा निकाल दिया था—पीला पीला लैनू[1] की तरह मुलायम। और कैसा स्वाद था।'

उसका मन जैसे ताड़ के फल के स्वाद से परितृप्त हो उठा।

बोला—

"भइया, जरा जल्दी आना।"

गोपी ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा—

"बस, घड़ी भर में आया।"

और वह झपटना हुआ बीयड़ की ओर चला। पहुँचते ही मुस्कराते हुए उसने कहा—

"कुछ धुआं-धक्कड़ का प्रबन्ध कर रखा है कि बस सूखे ही पीटे जा रहे हो।"

गोपी उनकी पीठ की ओर से आया था, इसलिये उनकी नजर अभी तक नहीं पड़ी थी। अब गोपी की आवाज सुनकर वे तीनों जैसे चौंक पड़े। रूपा खेत सोहना छोड़ कर सीधा खड़ा हो गया। उसके बायें हाथ में घास की मूठ थी। दाहिने हाथ में भी दो चार घासें थीं। लगातार पानी और कीचड़ के स्पर्श से उसके दाहिने हाथ की उगलियाँ सफेद सी हो गयी थीं जैसे मछली का पेट हो, सफेद और चमकता

१—मक्खन।

हुआ।

चेखुर और परताप ने भी घास गढ़ना बन्द कर दिया। उनके बायें हाथ में मुठी भर घास पड़ी थी और दाहिने हाथ में खुरपी। बायें हाथ की घास की मुट्ठी ऐसी मालूम हो रही थी जैसे किसी शरारती बच्चे ने चिड़िया का घोंसला नोच कर अपने हाथ में ले लिया हो और उसके अस्तव्यस्त तिनके इधर उधर बिखर रहे हों। गोपी के एकाएक आ जाने से वे कुछ अचरज में आ गये थे, पर उनके मुंह पर उभर आयी खुशी साफ झलक रही थी।

रूपा ने उल्लास पूर्वक कहा—"हो जायगा इन्तजाम धूंआ-धक्कड़ का, पर पहले यह तो बताओ, एक दिन के लिये तुम गये हिताई[1] में और आज कितने दिन पर आ रहे हो।"

गोपी—'क्या करे भई, सच: गया तो था कि जा कर दूसरे दिन वापस लौट आऊंगा, पर आज पूरा अठवारा हो रहा है। बहिन के यहां गया, फिर वहां से और एक जगह चला गया। राम राम करके कल पहर भर रात गये घर पहुंचा।"

बातें करते समय उसके चेहरे पर संतुष्टि की भावना उभर आयी, जैसे कोई सुखद स्मृति जाग गयी हो। बोला—

"पाहुन हैं बड़े दिलदार। जब जाओ, कुछ न कुछ तर-तीवन का परबन्ध कर ही देते हैं। खिलाने-पिलाने का उनको शौक है। घर के तो कोई खास सम्पन्न नहीं हैं: मगर हैं बड़े दिलदार। रोज चलने

१—रिश्तेदारी।

की तैयारी करता था, पर सबेरे देखता था, कभी उन्होंने मेरा कुरता छिपा कर रख दिया है, कभी लाठी छिपा कर रख दी है, कभी अँगोछा का पता नहीं है। पूछने पर कहते—हमें क्या मालूम, हम तुम्हारी चीजों को क्यों छूने जाँय। और अगर हम तुम्हारी चीजें छूयें तो तुम्हारी बहन हमें आराम से रहने देगी ?"

"और यह कह कर वह कुटिलता पूर्वक मुस्कराते रहते। मैं समझ जाता कि उन्होंने ही कहीं छिपा कर मेरी चीजें रख दी हैं : ताकि मैं जा न सकूँ।"

"बहन भी चुपचाप मुस्करानी रहती। जैसे दोनों में समझौता हो गया हो। और जब घड़ी दो घड़ी दिन चढ़ आता, तब छिपाई चीजों को ले आकर सामने रख देते और कहते—

"लो मिल गयी तुम्हारी चीज, अब जा सकते हो।"

"तो बताओ, कैसे आता। आखिरी दिन तो चलने की सब तैयारी कर चुका, बहन से भी इजाजत ले ली। भानजे ने भी मान लिया कि मामा चले जायँ, पर बहनोई को देखा कि वे मुस्करा रहे हैं। लगा कि दाल में कुछ काला है। बड़े घाती हैं बहनोई मेरे। चलने के लिये जैसे ही मैंने कदम उठाया कि अपनी नाक में तिनका डाल कर ठाँय से छींक मारी। अब बहन मेरे पीछे पड़ गयी—'ना भैया, मैं तुमको आज नहीं जाने दूँगी। मेरी कसम तुम आज न जाओ। लगी मिन्नतें करने। और तुम लोग तो जानते हो सगुन असगुन के बारे में औरतों में कितना परपंच होता है।"

"कितना उसे समझाया कि अरे यह तो पाहुन ने जबरदस्ती की छींक मारी है, पर उसे विश्वास ही नहीं हुआ और मेरे हाथ से लाठी लेकर एक कोने में रख दिया।"

बहनोई ने हँस कर कहा—

"अब कर लो राजी अपनी बहन को, और चले जाओ। अपनी तरफ से तो मैंने पहले ही मंजूर कर लिया है। अब मेरा दोष मत देना कि जाने नहीं देते।"

फिर भानजे से कहा—

"बचवा[1], तेरे मामा जाने वाले नहीं हैं। जा, खस्सी[2] और गँड़ास भी लेते आना, कर दें फतहयाबी। तेरे मामा की अवाई[3] में अब की बार खस्सी तो कटा ही नहीं ...।"

गोपी की बातें सुन कर परताप ने कुछ मुस्करा कर कहा—

"तभी तो तुम्हारे चेहरे पर चिकनाई चढ़ गयी है। हलुआना[4] खस्सी हजम कर आये हो पूरा का पूरा।"

चारों एक साथ ठठा कर हँस पड़े।

मेड़ पर एक तरफ हुक्का और चिलम रखी थी। चिलम उलट कर रखी गयी थी और उसके ऊपर तम्बाकू की छोटी पिंडी रखी थी। पास ही कंडे पड़े थे, पर उसकी आग सुगल कर ठंडी हो गयी थी।

रूपा ने उधर नजर डाली। बोला—

१—बेटे के लिये प्यार का सम्बोधन, २—बकरा, ३—आगमन,
४—बधिया किया हुआ।

"आग तो बुझ चुकी है यार, दियासलाई है किसी के पास ?"

चेखुर ने अपनी जेब से दियासलाई निकाली और फिर बीड़ी का बंडल निकाला। शेर-छाप बीड़ी थी। बंडल के ऊपर से साफ झलक रही थी शेर की तस्वीर। आधा बंडल खाली हो चुका था। बोला—

"लो बीड़ी दगाओ यार। बड़ी कड़ी बीड़ी होती है शेर छाप की। बस रंग ला देती है।"

उसके चेहरे पर एक स्निग्धता खेल गई, जैसे बीड़ी के खुशबूदार धुंए की कल्पना से उसकी आत्मा संतृप्त हो उठी हो।

एक एक बीड़ी उसने तीनों की ओर बढ़ा दी।

बीड़ी पीते पीते गोपी ने पूछा—

"यहां का क्या रंग ढंग है। और कोई नई बात तो नहीं हुई।"

उसकी आँखों में प्रश्न उभर आया था। उसकी मुखाकृति पर जैसे एक आकुल जिज्ञासा खेल रही हो।

चेखुर बोला :—

"नई बात तो यही है कि रूपा को काम पर से निकलवाने के फेर में है चौधरी। सुना है कि तुम्हारी भी कुछ खातिरदारी करने की ख्वाहिस रखते हैं। और फिर हम लोगों को क्यों छोड़ेंगे। बहुत चाहते हैं जो हम लोगों को।"

चेखुर के चेहरे पर घृणा, क्रोध और जैसे दृढ़ता एक साथ उभर आई हो।

गोपी बोला—"कुछ तो मैंने भी सुना है। लाला से मिल कर

सांठ गांठ कर रहे हैं। दूबे से भी कुछ सलाह-मशविरा हुआ है। पर अब की चौधरी के साथ-साथ उन लोगों को भी मालूम होगा कि कैसे बड़े चारे पर मुँह मारा है। अब हम वह नहीं रहे कि पीस कर पी जायँगे....।

उसकी मुट्ठियां तन गईं। चेहरे पर एक दृढ़ता खेल गई। आंखों में दृढ़ संकल्प जैसे नाच उठा। बोला—

"अब, इस बार लाला का भी मन मान जायेगा। काम से छुड़ा कैसे देंगे। फिर देखे कौन उनके यहां काम करने जाता है। अगर छुड़ाना ही था, तो जेठ में जबाब दे दिये होते। अब असाढ़ भर काम करा लिया, सब गृहस्थों ने अपने अपने हलवाहे रख लिये, अब किसी को कोई छुड़ायेगा तो जायेगा कहाँ। दूसरे, काम में कोई खामी हो तब तो बात दूसरी है।"

रूपा—"चौधरी से उनकी बात तो हुई थी, मुदा ठीक पता नहीं चल पाया कि उन्होंने क्या कहा। पर उनके रुख से मालूम होता है कि काम से कभी छुड़ाना नहीं चाहते, पर कोई बात ऐसी है जो मालूम नहीं हो पाती। लगता है जैसे कोई बहुत बड़ा मतलब साधने वाले हों।"

चेखुर—"यह मुन्शिया[1] एक नम्बर का हरामी है भाई, इसके पेट का कोई अन्त नहीं पा सकता। कितना कितना क्या क्या हजम किये बैठा है, कोई ठिकाना है! और कब क्या दाव मारेगा, सो कोई नहीं

1—मुंशी का अनादरसूचक संज्ञा।

बता सकता। हाथ भर की छूरी है इसके पेट में।"

परताप—"और ऊपर से कैसा नेक बनता है। हर किसी से कहता रहता है कि हमारी सिधाई का लोग नाजायज फायदा उठा ले जाते हैं। मुझसे भी एक दिन उसने कहा—'बच्चा, हमने जो लोगों के साथ भलाई कर दी, वह क्या कोई किसी के साथ करेगा। पर सच बात तो यह है कि ऐसा घाती आदमी हमने और नहीं देखा।"

गोपी—"हरामी है। उसे तो अगर कोई भोथर[1] छुरी से, जिबह करे तो भी कोई पाप नहीं लगेगा। क्या कुकरम[2] बचा है उससे। दूसरे की बहू बेटियों पर वह नजर डाले, दूसरों को लड़ा कर अपना मतलब वह साधे, पुलिस को घूस वह दिलवाये। और जब पटवारी था, तब तो कुछ पूछना ही नहीं, किस गरीब का उसने अहित नहीं किया खेत कोई जोत रहा है, परताल किसी के नाम से हो रही है। बांस की खूँटी कोई और लगाये, नाम चढ़ा दे वह अपने दोस्तों खैरखाहों का।"

परताप—"और भइया, मुदा इस बेमरव्वुती से तहरीर वसूल करता था जैसे करजा वसूल कर रहा हो। साफ कह देता था कि जो नहीं देगा, वह एक के बदले दस देगा, और सौ बार नाक रगड़ कर। अभी भी देखो, चार बरस हुए पटवारीगीरी छोड़े, फिर भी सेरी[3] वसूल हो कर उसके घर जाती रहती है। उसके यहाँ कारपरोजन पर कुछ न कुछ

१—कुँठित, २—कुकर्म, ३—खेत में पैदा हुए अनाज पर हर मन पीछे एक सेर।

सब को देना ही पड़ता है। और देखो, काली माई का चबूतरा बनवाने के लिए दो-दो बार भेर[1] उगाहा, और सब रुपये हजम। दो-दो बार ईंट का भट्ठा शिवाले के सामने कुटी बनवाने के लिए लगवाया, मेहनत गाँव से करवाई, ईंट बेगार में पथवाई, पंचायत के पेड़ पौधे मुफ्त में काटे कि यह तो सारे गाँव का काम है, पर जब एक बार ईंट पक गई तो कूआँ बंधवा लिया। दूसरी बार तैयार हुई तो अपने घर में बैठका बनवा लिया।"

चेखुर—"उसके कुकर्मों का कोई ओर छोर है! जानते नहीं हो क्या, कि मुसई की औरत छोड़ कर, दूसरे गाँव में दूसरे के यहाँ जा कर बैठ गई तो उन सबों से पूरे सात सौ रुपये इसी लाला के बच्चे ने वसूल किये थे। कुछ वहाँ के चौधरी को सुँघाया, कुछ अपने एक और जोड़ीदार को दिया और पूरे चार सौ रुपये खुद हज़म कर लिया, डकार भी नहीं ली। बेचारे मुसई को एक पैसा तक नहीं दिया। अब बताओ, इस अंधेर का कोई अन्त है। तिस पर बड़ा धर्मात्मा का नाती बना फिरता है। हुँह!"

गोपी—"हम लोगों पर भी अपनी वही हथौटी डालना चाहता है। खून मुँह लग चुका है न। और यह दलथंमन भी उसी की बदौलत और भी शेर बना फिरता है। पर अब मालूम होगा इन सबको आटे दाल का भाव।"

और दृढ़ संकल्प से वह तन गया, जैसे अंगद ने अपने पाँव धरती पर रोप दिये हों।

१—चन्दा।

८

सावन का महीना चल रहा था। खरीफ की फसल काफी बढ़ चुकी थी। अरहर घुटने भर तक आ गई थी। उसकी लम्बी-लम्बी पत्तियाँ, नीम की पत्तियों की तरह मालूम होती थीं। उनकी पतली-पतली डंठल बेत की तरह झुक-झुक जाती थीं। अरहर के साथ-साथ मूँग और उर्द भी बोई गई थी। उनकी पान की तरह की कुछ मोटी पत्तियाँ खुरदरी थीं। उनके ऊपर हलका-हलका सफेद रोआँ सा मालूम होता था जो उंगलियों के स्पर्श से कुछ-कुछ गड़ जाता था। अरहर के लम्बे पतले पौधों पर उर्द और मूँग के पौधे लिपटे थे जैसे कोई बच्चा खेल से दौड़ता आकर अपनी माँ के दोनों पैर छान[1] कर लिपट जाय।

ईख के पौधे काफी बड़े हो गये थे। कोई-कोई तो कमर बराबर

१—हाथों से बाँध कर।

तक आ गया था। अभी बैसाख-जेठ में जो उनकी बाढ़ रुकी हुई थी, वर्षा की फुहारों ने जैसे उन्हें बढ़ावा दिया और सावन आते न आते उमंग कर छाती बराबर आ गये थे, जैसे तेजी से आगे बढ़ते हुए दूसरी फसलों को वे ललकार रहे हों, कि हाँ दम है तो आओ, आगे बढ़ो हमारे बराबर। गन्ने के पौधे की जड़ पर सूखी बादामी पत्तियाँ लिपटी थीं, जैसे गन्ने के पौधे ने रेशमी कछोटा काछ रखा हो। और गन्ने के ऊपर उसका अगाड़ा हरा-भरा लहराता हुआ; लगता था गन्ने का खेत प्रकृति का मोर्छल हो, जिसे धरती रानी के सम्मान में प्रकृति धीरे-धीरे हिला रही हो। गन्ने के खेतों के बीच से कभी स्यार और कभी लोमड़ियाँ सरसराती हुई निकल जाती थीं, उनके गुजरने से सर-सर की आवाज होती, जैसे कोई कोरे कागज को फाड़ रहा हो।

सांवा और मड़ुआ अपनी पूरी बाढ़ पर आ चुके थे। मड़ुए का पौधा करीब दो-दो हाथ ऊँचा था। उनके पौधे अपने शीश पर बालों का मुकुट धारण किये हुए थे। मड़ुए का पौधा इस तरह अपनी बाल को टेढ़ी किये सर पर धारण किये था, जैसे कृष्ण की मूर्ति हो, जो बंशी बजाने के साथ त्रिभंगी हो गयी हो अथवा कोई कुशल नर्तकी हो जिसकी कला की भंगिमा का यह उत्कृष्ट उदाहरण हो।

साँवा के खेत हलकी सुनहली बालों को अपने सर पर धारण किये हुए थे। हवा के हलके झोंके के साथ बालें काँप-काँप जाती थीं जैसे कोई नवोढ़ा अपनी सखियों के बीच बैठी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती हो और उसका शरीर उस हँसी के आलोड़न से बल खा-खा उठता हो।

इसी तरह ज्वार, बाजरा और सनई के खेत लोट पोट हो रहे थे। ये सभी करीब-करीब कमर भर तक आ चुके थे। पुरवा हवा जब इन पर से गुजरती थी, तब ये झूम-झूम कर उठते थे, लगता था जैसे दो सखियाँ स्नान करने के पश्चात अपने दोनों हाथों में सारी के कोरों को पकड़ कर सुखा रही हों अथवा हरियाली का सागर तरंगायमान होकर मचल रहा हो।

पेड़ों की पत्तियाँ वर्षा से घुल कर सद्यःस्नाता किशोरी सी मालूम हो रही थीं। पुरवैया हवा के साथ ताल दे कर जैसे उनकी पत्तियाँ नाच रही थीं। पेड़ों के तने के पास की जमीन गीली-गीली थी, उनके तने से सटकर कुकुरमुत्ते उगे हुए थे। वे नन्हें-नन्हें सफेद छतरीनुमा कुकुरमुत्ते, जैसे बच्चे का मन बहलाने के लिये किसी स्नेह-शीला माँ ने खिलौने रख छोड़े हों।

अभी-अभी महीना भर पहले ही ये आम के पेड़ फलों से लदे हुए थे। पकते हुए आमों की सुगन्ध से हवा के चरण जैसे सुगन्ध के मोह में मन्द हो जाते थे, दो क्षण ठिठक कर जैसे वह सुगन्ध का उपभोग कर लेना चाहते हों, किन्तु आज सभी आम झड़ चुके थे। फल विहीन, वे पेड़ ऐसे लग रहे थे, जैसे किसी महादानी ने अपना सर्वस्व दूसरों के हित के लिये सहर्ष निछावर कर दिया हो। वे फल-विहीन पेड़ तपस्वी से मालूम होते थे, जिसने अपनी तपस्या का फल परार्थ दे दिया हो और फिर भी वे निरपेक्ष खड़े थे जैसे इतना महान दान जो उन्होंने दिया था, उसका उन्हें कुछ भी भान न हो। परम आत्म-संतोष की भावना से वे खड़े थे।

नीम के पेड़ों की छटा तो और भी निराली थी। आरी की तरह कटावदार छोटी-छोटी पत्तियाँ, सीकों के साथ लगी हुई, उनकी टहनियाँ धीरे-धीरे हिल रही थीं। उनकी डालों पर झूले पड़े हुए थे। किलोलें भरते हुए बच्चे, बच्चियाँ, किशोर, किशोरियाँ, युवक, युवतियाँ और जवान, प्रौढ़ यहाँ तक कि बूढ़े तक झूला झूल रहे थे। सन की रस्सी की लम्बी-लम्बी डोरियाँ, उनपर पड़े हुए पटरे, उन पर झूलने वाले। हवा पर लहराते हुए झूले का ऊपर नीचे होना, मानो झूला आकाश और धरती का सम्बन्ध जोड़ रहा हो। झूले पर बैठे हुए लोगों का दिल भी जैसे झूले के साथ डोल रहा हो। नवयुवतियां झूले पर चढ़ी हुई अपने हृदय का भाव जैसे कजली के रूप में प्रकट कर रही हों। उनका अनुराग जैसे छलका पड़ता हो—

कइसे खेले जइबू सावन में कजरिया
बदरिया घिरि आई ननदी।
तोर संग ना सहेलो, कइसे जइबू तु अकेली
गुंडा छेकि लिहें तोहरी डगरिया,
बदरिया घिरि आई ननदी।

और रह-रह कर खिलखिल का मन्द स्वर, जैसे छोटे-छोटे पत्थरों के बीच से कोई पहाड़ी नदी कलकल करती हुई बह रही हो।

किशोरियाँ, बड़े-बूढ़ों से हट कर अलग झूले, झूल रही थीं। उनकी चपलता और भी बढ़ गयी थी। उनकी आंखों में सावन की हरियाली जैसे छा गई हो और उनके हृदय का उल्लास जैसे उनके कच्चे गले से

रागिनी बन कर फूट पड़ता हो।

'खेलै गइली' सावन में कजरी
कन्हइया धइलैं अँचरी,
अँचरिया में लागल हो झालर मोतिया !

किन्तु काम-काज, आदमी घड़ी दो घड़ी झूले का आनन्द ले लिये, और फिर अपने कामों से जा लगे, नहीं तो अगर अपना पूरा समय इसमें बिताने लगें, तो फिर घर गृहस्थी का और काम काज कैसे चले। खेत की देखभाल करना, गाय-भैंस चराना, उनके लिए घास भूसे का इन्तजाम करना, खेत जोतना आदि, इन्हीं सब कामों में उलझे रहते थे।

सुगनी अपनी बाछी के लिये घास गढ़ रही थी। यह बाछी रूपा ने अधिया पर ली थी। जब यह बाछी सात-आठ महीने की हो गई थी, जब इसका दूध पीना छूट गया था, तब रूपा ने अधिया पर ले लिया था कि पाले-पोसेंगे और जब बड़ी होकर गाभिन हो जायगी, फिर ब्यायेगी तो जो इसका आधा दाम होगा, वह पा जायेंगे। सात-आठ महीने की बछिया थी, अभी दो ढाई साल तक पालेगा पोसेगा, तब तीन साल की उमर में गाभिन होगी और फिर दस महीने तक बच्चा पेट में। इस तरह इतने वर्षों की मेहनत के बाद तो उसे बाछी के दाम का आधा मिलने वाला था। इसी की आशा में उसने बाछी एक गृहस्थ से अधिया पर ले ली थी। उसी के लिए सुगनी घास गढ़ रही थी। उसके साथ में अमिरती भी थी।

इन दोनों में इधर अपनापा बहुत बढ़ गया था। रूपा ने सुगनी से

जो सगाई की थी, उस बात को ले कर उनकी बिरादरी में उथल-पुथल सी मच गई थी। जो लोग गोपी वगैरह से चिढ़ते थे, वे तो बात को और भी बिगाड़ कर बनाते थे और जैसे अपने मन को संतोष देने के लिए कहते थे—"चौधरी से पाला पड़ा है, बिरादरी का मामला है, कोई बच्चों का तमाशा थोड़े ही है। अब पता चलेगा।"

साथ ही लोगों में यह समाचार फैल गया था कि गोपी अमिरती को रखने जा रहा है और इस बात को लेकर वे टीका टिप्पणी करते—

"अब उसे मालूम होगा कि बिरादरी किसे कहते हैं। अपनी विधवा भावज से शादी होनी है, पर बिरादरी का भी हक पद होता है और जब तक बिरादरी उसे मंजूर नहीं करेगी; तब तक कोई शादी पक्की कैसे होगी। वह कुजात होकर अलग रहे।"

किन्तु जहाँ लोग जितना ही इन्हें तिरस्कृत करना चाहते थे, वहाँ इनके समर्थन करने वाले भी कम नहीं थे। इनमें ज्यादातर तादाद नवजवानों की ही थी।

सुगनी एक हाथ से घास को थाम कर और दूसरे हाथ से खुरपी चलाती हुई बोली—

"बहिन, मुदा यह गाँव ऐसा है कि किसी की भलाई नहीं देख सकता। जिसका पेट भरता है, दो पैसा जिनके पास है, उनका तो मन और भी बदल गया है। ये तो बस चाहते हैं कि सब का हड़प कर अपना ही घर भर लें।"

अमिरती—"मैं कोई आज से देख रही हूँ। चार पाँच बरस हुए

यहाँ आये, और देख रही हूँ कि जैसे इस गाँव की रीति ही निराली है। तिसमें यहां की बिरादरी का तो कुछ पूछो मत! यह चौधरी अपने तो सत्तर घाट का पानी पीता रहता है और क्या अजाब इससे छूटा है? पर दूसरे अगर सही रास्ते पर चलें तो भी यह अपनी हेकड़ी दिखाये बिना नहीं मानता।"

सुगनी—"मुझे तो बस यहां तीन चार महीने हुए, पर इतने ही समय में देख लिया कि कौन कैसा है। पर बहन, जहाँ चौधरी ऐसा जल्लाद है वहीं गोपी बबुआ भी तो हैं! उस दिन अगर उनको जाकर नहीं छुड़ाया होता, तो वह कस्साई तो उनकी जान ही ले लिए होता।"

सुगनी के मुंह पर घृणा उभर आई जैसे चौधरी दलथंभन के नाम से ही उसके अंग में घृणा फूट पड़ती हो।

अमिरती बोली—'उस कसाई की न कहो। जाने कितना पाप हजम किए है। ऐसा अन्धेर तो कहीं देखा नहीं। अपने तो लूटता ही है, पटवारी के लिए तहरीर वह वसूल करता है, थानेदार के लिए घूस का प्रबन्ध वह करता है। हरी बेगारी का इन्तजाम वह करता है और मारे जाते हैं हम गरीब। वाह-वाही लूटता है वह!

फिर जैसे कुछ गुन कर बोली—"इस गांव के जो बड़ी जात वाले हैं, वह भी भेड़िया हैं भेड़िया! चाहे बाम्हन हो, चाहे ठाकुर हो और चाहे लाला हो, बस कहने भर के लिए ही वे बड़े-बड़ुआ हैं, नहीं तो कोई कुक-रम उनसे नहीं छूटता। जिसमें एक यह है मुंहफुंकना जयकिशना, कोढ़ फूटेगा इसकी देह से! इतना सताया है इसने गरीबों को! और

यह दलथंमन हर वक्त उसके आगे पीछे लगा रहता है। जहां वह अपने कुछ नहीं कर सकता, वहां लाला को सामने कर देता है और फिर कुछ न पूछो उसका कारनामा। भलाई तो जैसे किसी की यह करता ही नहीं। अभी मेरे सामने की ही बात है। इसका लड़का बीमार पड़ा था, तो उसका एक साथी दिन का दिन, रात का रात उसके सिरहाने बैठा रहता, मानो तुम, दवा बनाते बनाते उसकी उंगली घिस गई, पर इस लाला ने उसका एहसान कुछ नहीं माना। जमीन के मामले में ठाकुर ने इसे सौ पचास रुपये संघाया, और जाकर वह उसके खिलाफ गवाही दे आया। बोलो, यह आदमी का जाया है कि राक्षस है पूरा।"

अमिरती और सुगनी दोनों का मन घृणा से भर उठा। जैसे मुंशी जयकिशनलाल के प्रति उनका रोम थ थ कर रहा हो।

फिर सुगनी बोली—"अच्छा बहन, मैं तो चली। कब से आई हूँ। तेरी तो खांची भी अभी नहीं भरी। तुम तो रहोगी अभी।"

सुगनी बोली—"हाँ बहिन, बस इसी घास का ही तो भरोसा है। अभी कुछ घास और करूँगी। नहीं तो अपने पास कहां है भूसा कि बाछी को खिलाऊंगी।"

अमिरती अपनी खाँची उठा कर चली गयी।

अमिरती चली गयी तो सुगनी ने और भी तेजी से हाथ चलाना शुरू किया—'अभी अभी घड़ी भर में वह घास पूरा नहीं कर लेगी तो देर हो जायेगी। अभी घर जब पहुंचेगी, तब रोटी-पानी का परबन्ध

करना है।"

वह जल्दी जल्दी हाथ चलाने लगी।

सनई के खेत में वह घास कर रही थी। सनई के पौधे जितने जल्दी बढ़ जाते हैं, उतनी जल्दी और पौधे नहीं बढ़ पाते। खेत अच्छा तैयार रहे तो बीज पड़ने के महीने भर में दो ढाई हाथ के हो जाते हैं। फिर तो उन्हें छाती और मनुष बराबर होने में क्या देर लगती है।

जिस खेत में सुगनी घास गढ़ रही थी, वह मनुष भर से ऊँचा हो उठा था। पतले पतले लचीले पौधे, अरहर की पत्तियों की तरह कुछ लम्बी पत्तियां, मगर कुछ गाढ़ा हरापन लिए, उसमें कुछ मटमैलापन समाया हुआ था। पौधे के ऊपर का हिस्सा इतना नर्म और मुलायम था कि हाथों में ले कर जरा सा दबाने से ही मसल उठना। हल्की हवा के चलने से ही समूचा खेत लहरा कर झुक झुक जाता था जैसे कोई लजीली दुलहन पहली बार ससुराल आने पर अपने में ही समा जाना चाहती है, उसी तरह सन का हरा खेत लोट लोट जाता था, मचल उठता था जैसे वह खुशी में फूला न समाता हो।

सनई का यह खेत मुंशी जयकिशन लाल का था। यों किसी के भी खेत में घास गढ़ना मनाई नहीं है, हां इतना लोग ख्याल रखते हैं कि फसल कुचलने न पाये। यों घास गढ़ने के बहाने अपनी खांची में फसल उखाड़ कर लोग रख लेते हैं, पर सुगनी ने तो भूल से भी कभी दूसरे का एक पत्ता भी नहीं छूआ था और न तो उसने कभी ऐसा किया ही था। सर झुकाये वह घास गढ़ रही थी।

मुंशी जयकिशन लाल अपने खेतों को देखते भालते घूम रहे थे। यों हर किसान रोज अपने खेतों को, उसकी फसल को एक बार जरूर ही देख लेता है। खेत तो अभी तक टुकड़े टुकड़े बंटे हैं, किसी का दस बिस्सा पूरब के सिवान में हैं, तो एक बिगहा पश्चिम के सिवान में। एक टपरा इधर है, तो एक टपरा उधर। और इस तरह किसानों को चारों ओर नजर-निगरानी रखनी पड़ती है। दूसरे गांवों में ऐसे घर बहुत ही थोड़े हैं, जिनके पास खाने कमाने भर पूरे खेत पड़ते हों और ऐसे लोगों की संख्या और भी ज्यादा है जिनके पास एक धूर भी खेत नहीं है। इसलिए अगर किसान अपने खेतों को सावधानी से निगरानी न करें, तो मौका पा कर उसमें चोरी हो जाना कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

मुंशी जयकिशन लाल जब खेनवाही करते करते अपने इस खेत के पास पहुंचे तो उनके कानों में चूड़ियों की हलकी सी खनक आयी, जैसे, कोई स्त्री अपने हाथों को हलके हलके हिला रही हो, जैसे रोटी बेलते समय चूड़ियों की हलकी खनक होती रहती है।

मुंशी जी समझ गये कि कोई औरत खेत के भीतर घास गढ़ रही है कौन है यह ?

वे सोचने लगे—"ये घसियारिनें सारे खेत का सत्यानाश कर देती हैं। जरा नजर भँजी नहीं कि खड़ी फसल काट कर खांची में भर लेती हैं। यही होती है इनकी घास! आज जो भी हरामजादी होगी, उसकी हड्डी पसली तोड़ कर रख दूंगा।"

धीरे धीरे पांव दबा कर वह खेत में उतर आये। खेत की मेड़ से केवल तीन चार हाथ की दूरी पर ही सुगनी घास छील रही थी। मुंशी जी की नजर उस पर पड़ी तो एक क्षण के लिए वे ठिठक गये। फिर दबे पांव वे उसकी ओर बढ़ने लगे, एकदम दबे पांव, जैसे बिल्ली चुपचाप अपने शिकार की ओर कदम बढ़ाती है। उसके बिल्कुल सामने जाकर वह चुपचाप खड़े हो गये और उसे एकटक देखने लगे। उनकी आंखों में लोलुपता थी, और थी अतृप्त वासना। जैसे किसी मेमने को गड़ेरिये से बिछुड़ कर निराले में बेखबर घास चरता देख कर भेड़िये के मुँह में पानी आ जाये।

सुगनी घास छीलने में इतनी व्यस्त थी कि उसकी नजर ही नहीं उठी। उसको इस बात का जरा भी भान नहीं हुआ कि उसके सामने कोई खड़ा हुआ उसे घूर कर एकटक देख रहा है।

मुंशीजी एकटक उसे देखते रहे, आत्म-विस्मृत होकर—झूम झूम कर घास गढ़ने के कारण उसके माथे पर से एकरंगी की साड़ी कुछ सरक गयी थी, और एक तरफ जा कर उसके कन्धे पर रुक गयी थी। इससे बायें ओर का उसका पूरा सर साफ साफ दिखाई दे रहा था। संवारे हुए बाल, उसके कानों को छूते हुए पीछे की ओर चले गये थे, और सर के पीछे जूड़ा बँधा हुआ था। उसके कानों में बालियां पड़ी थीं। दो एक बालियां चांदी की थीं और एक दो पीतल की। उसमें किसी में मूंगा, और किसी में सफेद मोम जमाई गुरिया गुही हुई थी। सर के हिलने के साथ साथ उसके कानों की बालियां भी धीरे-धीरे हिल रही थीं,

मानों वे बालियाँ कुछ और झुक कर उसके गालों को छू लेना चाहती हों, और जब वे उसके गालों का स्पर्श नहीं कर पाती हों तो अपनी बेबसी पर उन्हें चोट पहुँच रही हों—हम कुछ और बड़ी होतीं तो उसके गालों तक तो पहुँच पातीं, फिर तो यह जनम सार्थक हो जाता। काले बालों की एक लट बिछुड़ कर उसके बायें कान को बीचों बीच से आधा ढँकती हुई उसके गालों पर टकरा रही थी, उस भरे हुए श्यामल गाल पर काले छितराये हुए बालों की लट ऐसी मालूम हो रही थी मानो स्वच्छ नीले आकाश में कोई काली गोट टाँकने का प्रयत्न कर रहा हो अथवा नीचे आकाश में कोई चपल बालक अपनी गुड्डी में काली किनारी बाँध कर उड़ा रहा हो। नाक में लौंग पड़ी थी, पीतल की। उसके गोल हलके श्यामल मुंह पर स्वस्थ यौवन की लावण्यता दीप्त थी जैसे विधाता ने बड़े स्नेह से सजाया सँवारा हो। आँखों में हृदय की भावना झलकती हुई, भौंहें परिश्रम करने के कारण एक तिरछी खिंची सी, माथे पर लाल बिन्दी, उसके श्यामल मुँह पर वह लाल बिन्दी ऐसा मालूम होती थी, जैसे हलकी बैंगनी साड़ी पर किसी ने लाल डोरे से कसीदा काढ़ रखा हो, या धूमिल राख के ऊपर आग की चिनगारी चमक रही हो। परिश्रम के कारण उसके मुंह पर पसीने की बूँदें चुचा रही थीं। पर वे बूंदें लुढ़क नहीं रही थीं, मानों वे बूंदें श्यामल सलोने मुंह के स्पर्श से अलग नहीं होना चाहती हों, उनका संग उन्हें ऐसा प्रिय हो, ऐसा लुभावना हो कि उस स्पर्श दुख से उन्हें जैसे रोमांच हो गया हो, आज जैसे उनकी जिन्दगी की साध पूरी हुई हो।

लाल रंग के एकरंगी साड़ी के भीतर से झलकती हुई, मांसल देह पर कसी छींट की अंगिआ, आधी बाहों तक की। उसकी सुडौल गोल गोल बाहों पर अधबहियों की बाहें जैसे और भी कसी जाती हों, मानो उसकी बाहों का आलिंगन कर रही हों। गाढ़े लाल रंग की जमीन पर काली काली बूंदियां, लगता था जैसे कमल के फूल पर मधुमक्खियाँ बैठी हुई मधु संचय कर रही हों।

घास गढ़ते समय उसके हाथों की जो हरकत होती थी, उससे उसका सारा शरीर धीरे-धीरे हिल रहा था, जैसे काठ की कोई नारी मूर्ति पानी की लहरों पर धीरे-धीरे हिल रही हो।

उसके हाथों की चूड़ियाँ लगातार खनक रही थीं। उनका मन्द रुनझुन वातावरण को संगीतमय कर रहा था।

जयकिशन लाल लोलुप, लुब्ध दृष्टि से सुगनी को देखते रहे। उन कुछ क्षणों में वे जैसे धरती की सीमा का अतिक्रमण करके स्वप्न लोक में पहुँच गये हों।

सुगनी पर उनकी आँख तो बहुत दिनों से थी। उनके लिए यह कोई नई बात नहीं थी। अपने जीवन में न जाने इस तरह वे कितनी स्त्रियों के सम्पर्क में आये थे। और वह सम्पर्क क्या? खेतों में काम करने वाली मजदूरिनों, बनिहारिनों और दूसरी छोटी कौम की औरतों को कभी कुछ दे कर, कभी कुछ लालच देकर और कभी डरा धमका कर उनके साथ अपनी मनमानी किया था।

सुगनी तो जब से आयी थी तभी से उनकी नजरों पर चढ़ी थी,

परन्तु मुंशी जी के आज तक के सारे प्रयत्न बेकार गये थे। अपने मन की बात वे पूरी नहीं कर पाये थे। मुंशीजी ने उसे माने-माने बुझा दिया था कि वे उसके रूप की कद्र करते हैं। खेत में जब-जब वह काम करने गई थी, तब तब मुंशी जी ने अपेक्षाकृत मजदूरी उसे अधिक ही दी थी। पर सुगनी के दिल में जैसे शुरू से ही खटका रहा हो, उनकी आँखों की लोलुपता को उसने पहले ही जैसे आँक लिया हो, जैसे हिरणी को छिपे हुए जाल का आभास मिल गया हो और वह उससे दूर दूर ही रह रही हो।

आज इस एकान्त में सुगनी को पाकर मुंशीजी का मन खिल उठा। उनका रोम रोम पुलकित हो उठा। आज उसे प्राप्त करके ही तो रहेंगे!

मुंशीजी चुपचाप सुगनी की ओर देख रहे थे, जैसे आँखों आँखों उसे पी जाना चाहते हों, उनके रोम रोम जैसे सहस्र आँखें बन कर सुगनी की ओर निहार रहे हों।

किन्तु सुगनी को इसका भान भी नहीं था कि उसके सामने कोई खड़ा भी है।

जब यकायक उसका मुँह ऊपर उठा तो वह सन्न रह गई, मेमना जैसे हरी हरी घास चर रहा हो और सर उठाये तो सहसा उसके सामने लप-लपाती जीभ निकाले भेड़िया नजर आ जाये। उसका प्राण सूख जाये और उसके रोम रोम सिहर उठें।

भय के मारे सुगनी के हाथ की खुरपी छूट कर जमीन पर गिर पड़ी।

उसका दूसरा हाथ जहाँ का तहाँ रह गया। हड़बड़ा कर वह खड़ी हो गई। फटी फटी आँखें जैसे भय से बाहर निकल पड़ेंगी। एकटक वह हतप्रभ सी ताकती रही, निश्चल, निर्निमेष, जैसे पर-नुची चिड़िया के सामने साँप फन काढ़े खड़ा हो।

जयकिशन लाल जैसे इस स्थिति के लिये पहले से ही तैयार रहे हों। आश्वासन देने के स्वर में उन्होंने कहाः—

'अरे पागल है क्या, इतना घबराती क्यों हो?'

और फिर जैसे उनके स्वर में माधुर्य और भी बढ़ गया। स्नेह बताते हुए बोलेः -

'सुगनी!'

सुगनी का मन-प्राण जैसे काँप उठा। जैसे उसके सामने यह जो जयकिशन नामधारी आदमी खड़ा है, वह आदमी न हो, भयानक राक्षस हो, जिसके जबड़े से आदमी का लहू टपक रहा हो और अब वह सुगनी को भी अपने जबड़े के नीचे पीस डालेगा।

फिर अपनी स्थिति का जैसे उसे ख्याल आया। घास को वहीं छोड़ कर खेत से बाहर निकलने के लिये वह आगे बढ़ी।

दो कदम आगे बढ़ कर जयकिशनलाल उसके एकदम पास आ गये और अपने दाहिने हाथ से सुगनी का हाथ पकड़ लिया।

सुगनी ने हाथ झटक कर छुड़ा लिया।

जयकिशनलाल ने हँस कर कहाः—

'इसमें नाराज होने की क्या बात है! सच कहूं सुगनी, तू तो

चमार के घर में जन्म लेकर विधाता का उपहास कर रही हो। तुम्हें तो किसी राजा के घर में जनम लेना चाहिये था। और सुन, वह दलथम्भन चौधरी बोलता था कि रूपा को काम पर से हटा दो, पर मैं तुमसे साफ कहता हूँ कि चौधरी की क्या हस्ती है जो तुम लोगों का कुछ बिगाड़ सके।"

फिर उन्मत्त की तरह बोले—

"सुगनी, जब से तुमको मैंने देखा है तब से मेरा मन बेकाबू हो गया है। आज शाम को आकर साड़ी के लिये दाम ले जाना।"

इतना कह कर जैसे पागल की तरह मुंशी जी ने सुगनी को अपनी दोनों बाहों में पकड़ लिया और जैसे बिजली की तरह टूट कर सुगनी का पूरा हाथ तड़ाक से मुंशी जयकिशनलाल के गाल पर जा लगा, जैसे नगाड़े पर पूरी ताकत से चोट पड़े।

卐

६

रूपा जयकिशनलाल के बैलों को चराने के लिये ले गया था। अभी अभी ही आकर बैठा था। उसके साथ ही गोपी भी था। रूपा जब आ रहा था, रास्ते में गोपी से मुलाकात हो गई थी और दोनों साथ साथ चले आये थे।

गोपी ने आते समय सोचा था कि चल कर सुगनी से अपनी शादी के बारे में बातचीत करेंगे। उसे अमिरती भाभी की सहमति की खबर सुनायेंगे, अपनी योजनाएँ बतायेंगे और इस बात पर भी विचार करेंगे कि हम लोगों की शादी की बात को ले कर बिरादरी के लोगों में जो हंगामा होगा, बिरादरी और चौधरी जो भोजभात के लिये, जुर्माने के लिये दबाव डालेंगे, उस पर बातचीत कर लेंगे। फिर रूपा भी साथ ही है। दूसरे; सुगनी के यहाँ पहुँच कर वह जिस आत्मीयता और स्नेह का बोध करता

है, उस स्नेह और आत्मीयता का बल पाकर अपने में वह शक्ति और साहस महसूस करता है कि चौधरी दलथम्भन ऐसे दस से एक साथ ही टक्कर ले सकता है। फिर उसके साथ वही अकेला नहीं, गाँव के और भी नौजवान हैं। यहाँ तक कि चौधरी का लड़का भी उनके ही साथ है। इन्हीं बातों को लेकर उसे बातचीत करनी थी।

रास्ते में रूपा की जो गोपी से मुलाकात हो गई तो रूपा ने कहा—

"कहाँ जाते हो गोपी?"

गोपी ने कहा—

"मैं तो सुगनी भाभी के यहाँ चल रहा था। चलो, तुम भी मिल गये, अच्छा हुआ। आज बड़ी जल्दी आ रहे हो लालाजी के यहाँ से।"

गोपी की बातें सुन कर रूपा ने मुसकराते हुए कहा—

"तो जैसे घर मेरा नहीं, तुम्हारी भाभी सुगनी का ही हो, इस तरह तुम बात कर रहे हो। और मैं जैसे कोई उसके घर टिकनेवाला मुसाफिर हूँ जो आज वहाँ टिका हूँ तो कल चला जाऊँगा। क्यों?"

गोपी चुपचाप मुसकराता रहा। कोई जवाब उसने नहीं दिया। उसकी आँखों में प्रसन्नता की चमक थी, ओठों पर मुसकराहट थी और मुँह पर सन्तोष की झलक, मालूम पड़ता था जैसे उसके नाम मात्र से ही उसकी आँखों में चमक और आत्म-सन्तोष की भावना उभर आई हो।

रूपा ने आगे कहा—

"अब मेरी समझ में बात आई। इधर तुमने अपनी भौजाई सुगनो को मालकिन मान लिया है और उसे महातम दे रखा है। और उधर जब देखो तब सुगनी के मुँह से तुम्हारा बखान—'गोपी देवर ऐसे हैं, वैसे हैं, बड़े बहादुर हैं, यह हैं, वह हैं।' अब मैं समझ गया कि यह तुम दोनों का आपस का समझौता हो गया है कि तू मेरी गा मैं तेरी गाऊँ। मैं तेरी तारीफ के पुल बाँधूँ और तुम मेरी। यह तो खूब रही। अच्छा गठबन्धन कर रखा है देवर भौजाई ने!"

और वह ठठा कर हँस पड़ा।

गोपी ने कहा—"यार सुनोगे भी कि अपनी ही हाँके जाओगे। और तुम इतना हँसते क्या हो! मैं तो सरेआम कहता हूँ, कि सुगनी भौजी तुमसे ज्यादा होशियार है, बहुत ज्यादा शऊरदार है, और हाँ, तुमसे ज्यादा दिलेर भी है।"

यह कह कर गोपी ने रूपा की ओर इस भाव से देखा जैसे अभी जो बात उसने कही है, उसे पूर्ण रूप से प्रमाणित करने की सामर्थ्य उसमें है। कोई अतिशयोक्ति की बात उसने नहीं कही है।

रूपा ने शरारत से किञ्चित् मुसकराते हुए कहा—

"अच्छा तो यह बात! मामला यहाँ तक बढ़ गया है कि अब तुम्हारी भाभी के आगे तुम्हारी नजरों में मैं एकदम बेकाम हो गया हूँ, एकदम निखट्टू।"

बनावटी क्रोध से उसने आँखें तरेर कर गोपी की ओर देखा, जैसे अपने प्रश्न का वह जवाब माँग रहा हो।

गोपी ने रूपा की आँखों में क्षण भर तक ताका और फिर उसी तरह हँस कर कहा—

"तो इसमें भी कोई शुबहा है। वह तो तुम्हारे पिछले जनम के भाग थे, जो भाभी ऐसी स्त्री तुम्हें मिल गई, नहीं तो एक से बढ़ कर एक खद-म्मर और खब्बीस औरतें पड़ी हैं इस धरती पर, और वैसी ही किसी खदम्मर से पाला पड़ जाता तब तुम्हें पता लगता। और तिस पर यह दूसरी सगाई। दूसरी सगाई की तो बाज औरतें ऐसी निकलती हैं कि अपने मरद को उँगली पर नचाये बिना उन्हें कल ही नहीं पड़ता।"

रूपा—"अरे भाई,तुम्हारी भौजी इतनी गुनवन्ती थी तभी तो उसके लिये सारी दुनिया की जहालत मोल ली है मैंने! देख, इससे बड़ी तपस्या और क्या होगी—छाती पर पत्थर तक रखा गया, उल्टी मुश्क चढ़ाई गई, यह क्या कम तपस्या है। फिर चौधरी की निगाहों में चढ़ा।"

चौधरी का नाम सुन कर गोपी जैसे क्षण भर के लिये किसी चिन्ता में खो गया। बोला—

"अब तो उन लोगों ने हम लोगों के खिलाफ पूरी मोरचेबन्दी कर ली है। बाबू आज बहुत बिलख रहे थे। बोले—'इस बुढ़ापे में जाने क्या-क्या देखना बदा है। बिरादरी से राढ़[1] बेसाह कर भला किसी का निस्तार हुआ है! बिरादरी हमारी-तुम्हारी बनाई हुई तो है नहीं! आदि काल से चली आ रही है। फिर चौधरी को अलग तुम लोगों ने

१—दुश्मनी माल लेकर।

नाराज कर लिया। मुझे बुला कर आज चौधरी कह रहे थे 'परमेसर तुम बूढ़े हुए, समझदार हो, तुमने जमाना देखा है, एक बार हम तुमको समझा देते हैं। इस गोपिया का अगर तुम भला चाहते हो तो उससे कहो कि हमारे रास्ते में वह न पड़े। बिरादरी के मामले में वह दखल न दे, नहीं तो उसकी खैर नहीं।'—बाबू आज बड़ी चिन्ता में हैं।"

रूपा—"यह तो हम देख ही रहे हैं कि हम लोगों को चौधरी हर तरह से साधना चाहते हैं।"

गोपी—"बाबू बहुत गुनान[1] कर रहे थे कि अब इस बुढ़ौती में जो न दुर्गति देखनी पड़े, वह थोड़ी। हुक्का-पानी बन्द होगा, जात-बिरादरी से खारिज होंगे, किसी के भोज-भात, शादी-व्याह, मरनी-करनी, तीज-त्यौहार किसी में भी शामिल नहीं हो सकते। अब इस बुढ़ापे में यह भोग भोगना बदा था।"

रूपा—"काका तो सीधे आदमी हैं; किसी ने दो बात कह दी उसे भी सर झुकाकर सह लिया। वे कहते हैं कि मेरी नेकी मेरे साथ और उसकी बदी उसके साथ। और फिर पञ्च-चौधरी को वह परमेश्वर मानते हैं। फिर हम लोग जो चौधरी और बिरादरी के खिलाफ आवाज उठायेंगे, तो इससे तो उनके दिल को दुःख पहुँचेगा ही। इतना स्नेह हम लोगों पर रखते हैं, इसी से अपने चाहे कोई भी दुःख उठायें, किसी काम के लिये, हम लोगों पर दबाव नहीं देते।"

गोपी—"यही तो बात है। वह जानते हैं कि लड़के जो कर रहे

१—चिन्ता, विचार।

हैं, वह गलत कर रहे हैं, पर तो भी उनका स्नेह हम लोगों पर वैसा ही है। वे तो अपनी किस्मत को ही कोस रहे हैं। कहते हैं—'मेरा तो अब बिरधापन आया, पके आम की तरह किसी दिन भी टपक पड़ूँगा और यह चोला छूट जायेगा। फिर मेरी अरथी में चार भाई कन्धा नहीं लगायेंगे, बिरादरी के दस भाई मेरे आँगन में जठन नहीं गिरायेंगे, तो मेरी मुकती कैसे होगी। मुदा बुढ़ापे में यह सब भी भोगना बदा था।"

कुछ क्षण तक गोपी खोया सा रहा।

फिर बोला—

"बाबू यह भी तो कह रहे हैं कि रूपा और सुगनी की जो सगाई हुई, वैसी अच्छी जोड़ी कहाँ मिलेगी। और तिसमें सुगनी तो लक्ष्मी है, लक्ष्मी। इस गाँव में ऐसी गुनवन्ती लक्ष्मी कहाँ है! बाकी बात यही है कि तुम लोगों की मति मारी गई है, बिरादरी और चौधरी जो दण्ड गिरायें, माथा झुकाकर उसे कबूल कर लो। बिरादरी तो जो सासन[1] कर रही है, वह तो उसका काम ही है, वह छुट्टा किसी को थोड़े ही छोड़ देगी और वह जरमाना करती है, दण्ड वसूल करती है, वह किसी एक के काम में तो आता नहीं। वह तो सारी बिरादरी के काम में आता है। और चौधरी तो अपनी चौधरियाँव रखेगा ही, उसके काम में हम लोगों को मीन-मेख निकालना ठीक नहीं।"

गोपी के चेहरे पर इस समय चिन्ता की रेखायें उभरी हुई थीं। एक

१—कष्ट देना।

तरफ जहाँ उसके मन में अपने पिता के प्रति आदर और उसकी बेबसी के कारण दुख का भाव था वहाँ दूसरी तरफ चौधरी दलथंमन और बिरादरी के इन लोगों के प्रति घृणा और क्रोध को भावना। उसकी मुखाकृति पर कभी नर्म भाव आ जाते थे, और कभी उसकी नसें तन जाती थीं, उसकी मुट्ठियाँ बँध जाती थीं। गुलाब के पौधे में जैसे कोमलता भी हो और तीक्ष्णता भी हो। एक तरफ जहाँ कोमल और मन-लुभावना फूल होता है, जो अपनी सुगन्ध से, मोहक रूप से लोगों का मन प्राण पुलकित कर देता है, वहाँ दूसरी तरफ तीक्ष्ण और कड़े काँटे भी होते हैं कि उसकी चुभन कँपा देती है।

उसने आगे कहा—"यह कैसे हो सकता है कि सर डाल कर हम तमाम अन्याय-अत्याचारों को सह लें और चूँ तक न करें। हम में तो वह सरधा भाई नहीं है, और नहीं है तो अच्छा ही है कि भींगी बिल्ली बन कर चूहों से कान कटाते फिरें। यह तो हमसे नहीं होगा। दलथंमन चौधरी ने न जाने कितनों को सताया है, कितनों का गला काटा है और वह कोई बिरादरी की बहबूदी के लिए नहीं, बिरादरी के कल्याण के लिए नहीं, बल्कि जो कुछ उन्होंने किया है, वह अपने फायदे के लिए ही। सबसे पहले उन्होंने अपने फायदे को रखा है, उसके लिए चाहे और किसी का कितनी भी परेशानी क्यों न उठानी पड़े, चाहे उसे कितनी ही जहालत की जिन्दगी क्यों न भोगनी पड़े, चाहे दूसरों की जिन्दगी कितनी नरकमय क्यों न हो जाये, चौधरी को तो बस अपने फायदे से काम है।"

रूपा—"इतना ही क्यों। जहाँ देखते हैं कि उनका काम नहीं

सध रहा है, तो हर तरह से नीचता पर उतर आते हैं। अगर वे बिरादरी के चौधरी हैं, तो उनका धरम तो यह था कि सारी बिरादरी के फायदे का काम कर, उलटे यहाँ यह करते हैं कि अपने तो लूटते-खसोटते ही हैं, और भी चार लूटने वालों को मौका देते हैं।"

गोपी—"हाँ, इसी मामले को लो। उस दिन जो अपमान उन्होंने महसूस किया उसका बदला लेने के लिये तुम्हारा काम छुड़ाने के लिये वह लाला जयकिशन लाल से कह चुके हैं। वह लाला तो एक नम्बर का हरामी है। इतने दिनों पटवारगिरी में लूटा, अब देश-सेवा के नाम पर लूट रहा है। वह देखता है कि इस चौधरी की वजह से पूरी चमटोल पर अभी भी धाक जमी हुई है। पटवारी दूसरे गाँव का आदमी हो गया तो क्या, अभी चमटोल से सेरही[1] उगाह कर चौधरी पहुँचाता है। हरी-बेगारी दिलाता है। कचहरी का जो कुछ काम हुआ उसे ही दिलाता है। फिर वह लाला क्यों न उसकी करेगा। पर अगर लाला ने तुम्हें काम पर से छुड़ाया तो उसका नतीजा उनको भोगना पड़ेगा। चौधरी और उनके लग्गू भग्गू उसका कुछ भी बना नहीं सकेंगे। यह तो मानी हुई बात है कि लाला अपने हाथ से खेती तो करेंगे नहीं, न वह हल जोतेंगे। न मोट पूर करेंगे, न वह खेत-खलिहान का काम करेंगे। उसके लिये बनिहारों-मजदूरों की जरूरत पड़ेगी। फिर अगर अन्यायपूर्वक एक को छुड़ा देते हैं तो कौन उसकी जगह पर काम करने के लिये आता है। वह अब पहले वाला जमाना नहीं रह गया। लाला हमें यह बता चुके हैं कि

१—मन पीछे एक सेर टैक्स।

चौधरी दलथंभन ने काम पर से हटा देने के लिये कहा, पर एक बात मेरी समझ में उसकी नहीं आयी। लगता था जैसे किसी बात को छिपा रहा था। साफ साफ उसने कुछ बताया नहीं। पर इतना जरूर मालूम हो रहा था कि वह कोई बहुत बड़ा मतलब निकालने के फेर में हो।"

गोपी—"उसकी माया का समझना हर किसी के बूते की बात नहीं। मैं तो कहता हूँ कि मौका पड़े तो वह अपने बाप को भी दगा दे सकता है और अपनी व्याहता औरत को भी बेच सकता है। सच, ये जितने बड़ी जाति वाले हैं, बस ऊपर-ऊपर के बड़े हैं इनके भीतर नाबदान की गन्दगी है, पर अगर हम लोग एका करके रहेंगे तो बिरादरी के ये चन्द बूढ़े और बड़ी जाति के लोग हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेंगे। हमारे पास रुपया नहीं है, पर एक चीज ऐसी है जिसका मोल हम लोग पह-चानें तो उसके आगे और सब चीजें हेय हैं और वह है मेहनत, हमारी पसीने की बूँदें। हम अगर अपनी इन पसीने की बूँदों के मोल को पहचानें तो फिर हमें किसी के सामने अपमानित होने की जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर हमें कोई भी जलील करने का दुःसाहस नहीं कर सकेगा और अब वह जमाना आ रहा है कि हम मेहनत करने वाले, पसीने की बूँद बहाने वाले, अपने बल को पहचान लें। इसलिये मैं कहता हूँ कि यह चौधरी और यह बिरादरी और बड़ी जातियों की यह ठसक हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती।"

रूपा—"लाला के दोनों हलवाहे भी मुझसे कह रहे थे। पूरब वाले खेत में हल चला रहे थे। बात उठ गयी इसी मामले की। मुदा, पहले

तो वे लोग बोले कि गोपिया ने जो जवाँमर्दी उस दिन दिखाई, उससे चौधरी ने उनसे साँठ-गाँठ की है कि रूपा को काम पर से छुड़ा दो। और दोनों ही हलवाहों ने मुझसे कहा—रूपा, तू निशाखातिर रख। लाला तुझे काम पर से बैठायेंगे तो हम सभी को बैठा दें। जब उनके मन में आता है जिस बनिहार को काम पर से छुड़ा देते हैं। मारपीट देते हैं, ताकत उनके पास है तो दूसरों को भून कर खा जायेंगे क्या !"

गोपी—"आज हम लोग अपने सभी दोस्त-मित्रों से मिल कर इस बात को समझ-बूझ लें और हमें अपनी तैयारी कर लेनी चाहिये। अगर चौधरी दलथंभन बिरादरी की धौंस जमाते हुये हम लोगों को जात से खारिज कर देंगे तो देखें कौन किसको जात से निकाल देता है ! रही बात लाला जयकिसन लाल की, सो उनके बारे में भी हम लोग सावधान रहें। आज बात करके पक्का कर लेना चाहिये कि अगर तुम्हें काम पर से हटाते हैं तो उनका काम कोई भी करने न जाये। देखें उनका हल कौन जोतता है। उनके बैल की सानी-पानी कौन करता है। उनकी फसल को कौन भरना-सींचता है। कौन उसकी देखभाल करता है। और यह दलथंभन उसकी कितनी मदद करता है। कहाँ से बनिहार-मजदूर ला कर देता है और फिर हम लोगों में दम रहते कौन उनके यहाँ काम करने जाता है। इसके बारे में मेरी बातें चेखुर से हुई थीं और परताप से भी हुई थीं। उन लोगों की भी यही राय है कि अब की बार हम लोगों को किसी तरह पीछे नहीं हटना चाहिये। अगर हम लोग अपनी ताकत को पहचान कर पूरी तरह जमे रहेंगे तो

फिर हम लोगों को उखाड़ फेंकने की ताकत किसी में नहीं है। वह फिर चाहे चौधरी दलथंभन हों, चाहे जयकिशन लाल हों। मैं तो कहता हूँ कि चौधरी दलथंभन का लड़का बिसेसर भी हम लोगों के साथ रहेगा। चौधरी को उनके घर में ही पछाड़ दूँगा तब उनको आटे-दाल का भाव मालूम होगा।"

अब तक वे रूपा के घर पहुँच चुके थे। पर सुगनी अभी तक नहीं आयी थी। रूपा ने जैसे अपने-आप ही कहा—

"अभी तक घास लेकर नहीं आयी। दोपहर हो रहा है!" फिर गोपी से बोला—

"उस आले में देखो, तम्बाकू पड़ा होगा। कुछ धुँआ-धक्कड़ हो जाय। तब तक वह आती होगी।"

गोपी आले से तम्बाकू उतारने चला तो रूपा ने मुस्कराकर कहा—"अभी तो रास्ते भर बड़े वीर की तरह बातें कर रहे थे, पर यहाँ अपनी भाभी को न पाकर तुम्हारा तो दिल बच्चे के सरीखा, रुँआसा हो गया। तुमने सोचा होगा, जाते ही भाभी अपने देवर के लिये चिलम भर कर हुक्का थमा देगी। और यहाँ अभी तक वह लौटी ही नहीं।"

गोपी ने आले पर से तम्बाकू उतार लिया। सर झुकाये ही वह चिलम चढ़ाने लगा। रूपा उसकी ओर देख कर मुस्करा रहा था और उसे चिढ़ाने की गरज से बोला—

"तुम्हारी भौजी को कोई भगाये थोड़े ही ले जा रहा है कि इतना मन मारे हो। जरा सब्र करो।"

रूपा की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि सुगनी वहाँ आ पहुँची। आज उसके सर पर घास की खाँची नहीं थी। उसके कपड़े अस्तव्यस्त थे। उसका मुँह तमतमाया हुआ था। उसकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी। उसके चेहरे पर कठोरता व्याप्त थी और जैसे वह अपने आपे में न हो। उसका उस क्षण का रौद्र रूप देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो महिषासुर का संहार करके साक्षात दुर्गा आ धमकी हो और उसके रोम रोम से क्रोध की ज्वाला फूट रही हो।

卐

१०

मुंशी जयकिशन लाल की उम्र पचास के पार हो रही थी। अपनी इस उम्र में उन्होंने बहुत ऊँच-नीच देखा था। बहुत पानी उनके ऊपर से बह गया था, किन्तु ऐसा अपमान और ऐसी हार उन्होंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं महसूस की थी।

जब पटवारी थे, तब तो उनका अखंड राज्य था। उस बे-पढ़े-लिखे गाँव के वे जैसे बिना ताज के बादशाह रहे हों। कोई भीतर से कुछ भी कहे, पर उनके सामने किसी की कुछ कहने की मजाल नहीं थी। बड़ी जातियों के किसानों-काश्तकारों को भी वे अपनी कलम की नोक से नचा डालते थे। उनको खुश करने के लिये तहरीर तो उनको मिलती थी, साथ ही साथ शादी-व्याह, मरन-करन या और भी कोई कार-परोजन पड़ता, तो मुंशीजी को किसानों-काश्तकारों से इतना सामान मिलता कि-

उन्हें किसी अन्य चीज के खरीदने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। दही, तरकारी, आटा, चावल, दाल, जलावन आदि सभी इतनी तादाद में इकट्ठा हो जाता कि महीनों तक मुंशीजी का परिवार उसे खाना-पीना और मौज करता। यह भी कहा जा सकता है कि मुंशीजी साल में एक-आध बार कोई न कोई इस तरह का परोजन ठान ही देते थे, जिससे न्यौते के रूप में काफी मिल जाय। वैसे शादी-ब्याह या मरन-करन तो हर साल पड़ता नहीं, अपने होश में उन्होंने अपनी बेटियों की शादियाँ कीं, एक लड़के का व्याह किया, अपनी माँ और अपने पिता की मृत्यु पर उनका ब्रह्मभोज किया। इन सभी अवसरों पर इन्हें किसानों-काश्तकारों की ओर से भेंट के रूप में इतना सामान मिला कि परोजन खतम होने पर भी महीनों तक भेंट में आयी चीजों का उपयोग करते रहे।

जब इस तरह का कोई परोजन नहीं होता तो वे सत्यनारायण की कथा ही ठान देते। अपने इलाके में न्यौता भिजवा देते। फिर उन्हें चढ़ावे के रूप में खासी आमदनी हो जाती थी। इस मौके पर वे इस बात का ख्याल रखते थे, कि चढ़ावे के रूप में कौन कितना दे रहा है, और कौन नहीं दे रहा है, या कम दे रहा है। फिर बाद में अवसर पाकर उसकी कसर वे निकालते थे। अगर किसी ने इन्हें ऐसे अवसर पर भेंट कम दी, तो कुछ नहीं होता, थानेदार से कह कर उसे परेशान ही करवा देते, थानेदार के हाथ कुछ रकम लग जाती, और मुंशीजी भी थोड़ा-बहुत पा जाते। दूसरी बात यह होती कि उनके इस तरह से आमदनी कराते रहने से थानेदार उनसे खुश रहा करता

चाहे कोई भी थानेदार आये, मुंशीजी उसे खुश ही कर लेते ! और फिर जरूरत पड़ती तो थानेदार मुंशीजी की मदद करता। साथ ही मुंशीजी इस तरह से गाँव की जनता में यह दिखा देते कि वह कोई साधारण आदमी नहीं हैं, उनकी दोस्ती थानेदार तक से है !

यही हाल कानूनगो के लिए होता। उनके महकमे का अफ़सर भी कानूनगो ही होता था,किन्तु कानूनगो को अच्छी तरह मालूम हो जाता कि जयकिशन लाल पटवारी से भाईचारे का सम्बन्ध बनाये रखने में कितने लाभ हैं, जब तक वह हलके में रहता, कभी किसी कानूनगो को अपने पूरे परिवार के लिए न तो आटा-चावल खरीदना पड़ना, और न तो गृहस्थी का और कोई सामान जुगाड़ करने की जरूरत पड़ती। मुंशीजी अपने हलके के असामियों से इन सब सामानों का प्रबन्ध करते रहते।

देहात का दौरा करने जब डिप्टी कलक्टर वगैरह आते या अन्य कोई अफसर आता तो उसके लिए भी हर तरह की सुविधायें मुंशीजी मुहैया करते। यह बात और है कि इस तरह की सुविधायें अपने अफसरों को दिलाने में मुंशीजी दोहरा हाथ मारते। एक तो यह कि उन सामानों में से एक हिस्सा मुंशीजी के घर आ जाता। दूसरे, अफ़सरों की नज़रों में सुर्खरु बने रहते। अगर कभी किसी काश्तकार ने उनके खिलाफ़ शिकायत करने का दुस्साहस किया भी तो मुंशीजी की खातिरदारी, खुशामद और जो-हुजूरी से अफसर लोग इतने दबे रहते कि शिकायत करने वाले को डाँट-फटकार कर हटा देते थे।

साथ ही मुंशीजी ने एक बात का ख्याल रखा था कि हर जात वालों

के मुखियों और सरगनों को वे मिला कर रखते थे। अपना फायदा करते थे तो उनका भी फायदा करा देते थे। मरते-पिसते थे नीचे वाले, जिनकी न तो कहीं सुनवाई थी और न जिनका कुछ बल था।

इस तरह अपनी पटवारगिरी के जमाने में उन्होंने काफी कमाया भी, लोगों पर रोब भी रखा। परन्तु पटवारगिरी के सिलसिले में उनकी कुछ ऐसी ग़ल्ती पकड़ी गयी कि कानूनगो तो क्या हाकिम परगना तक उन्हें बचा नहीं सके। पहले तो वे मुअत्तल रहे, बाद में बर्खास्त हो गये।

पटवारगिरी से अलग हो जाने के बाद उन्होंने सोचा-विचारा, और बहुत कुछ समझ-बूझ कर उन्होंने कांग्रेस का पल्ला पकड़ लिया। उनके सामने उनके कुछ ऐसे दोस्तों की मिसाल थी, जिनके पास न खाने का ठिकाना का और न पहनने का। किन्तु, जब से कांग्रेस में आ गये थे, तब से दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहे थे। इसके साथ ही लोगों में इज्जत अलग बढ़ गयी थी। लोग डरने लग गये थे कि इनकी पहुँच बड़े लोगों तक है। फिर इनके खिलाफ कब तक खड़े रह सकेंगे। दूसरे, उनमें से किसी ने कपड़े का, किसी ने मिट्टी के तेल का, किसी ने अन्य चीजों की कण्ट्रोल की दूकानें पा ली थीं और उससे काफी कमाया। जब ये दूकानें खतम हो गयीं तो भी कमाने के बहुत रास्ते रह गये। कभी थानेदार कानूनगो से, कभी तहसीलदार हाकिम परगना से, कभी और किसी अफसर तक कोशिश पहुँचाना, उनकी जेबें गर्म करना और अपना भी हाथ सेंक लेना!

मुंशी जयकिशन लाल ने बहुत कुछ सोच समझ कर कांग्रेस का पल्ला

पकड़ लिया था। और उन्होंने महसूस किया कि इसमें भी वे पटवारगिरी से घाटे में नहीं रहे हैं। अफसरों तक उनकी जान-पहचान तो पहले से ही थी। अब जब से खद्दर का कुर्ता, चप्पल और सर पर गाँधी टोपी आ गई थी, तब से उनका रङ्ग और भी चोखा हो गया था। गाँव-देहात की जनता और अफसरों-अहलकारों के बीच वे माध्यम से हो गये; किन्तु वह माध्यम था अपना और अफसरों की नींद मोटी करने के लिये।

अपनी इतनी बड़ी जिन्दगी में उन्होंने बहुत कुछ देखा-सुना था, काफी दाव-पेंच खेला था, काफी ऊँच-नीच काम किया था, परन्तु इतने अपमानित वे कभी नहीं हुए थे, जैसा कि मुगनी के हाथों हुए। उन्हें खुद भी याद नहीं कि कितनी औरतों के साथ उन्होंने इस तरह का खिलवाड़ किया था। कभी उसे राजी कर के, कभी जोर-दबाव से। बात फैलती भी थी और दब भी जाती थी। मौका पड़ने पर वह खुले आम कह बैठते थे—

"भाई, नीच कौमों की औरतों की भी कोई इज्जत होती है! वे भी क्या सती-सतवन्ती होंगी और उनमें भी भला कोई सीता-सावित्री हुई हैं! और ये दो-कौड़ी की औरतें! बताओ तुम्हीं, अगर उनसे खेल-खा लिया, तो क्या हर्ज है?"

तब उनका कोई अन्तरङ्ग दोस्त कह उठता—

"हर्ज! मैं तो कहता हूँ कि यह उनके साथ अहसान ही करना है। भला कौन उन्हें छूता है, इसी बहाने बड़े-बड़ुओं के सम्पर्क में आ जाती

हैं। उनका तो हर हालत में लाभ ही लाभ है।"

और मुंशी जी मुसकरा पड़ते।

किन्तु आज सुगनी के साथ जो दुर्घटना हो गयी थी, उससे जैसे जयकिशनलाल का आत्मा उस अपमान से काँप उठी—दो कौड़ी की उसकी इज्जत और इतना गुमान! अभी न जाने कहाँ कहाँ मारी-मारी फिरी है। सत्तर चूहे खा कर तो आज सतवन्ती बनती है, इसके पहले न जाने कितने खसम कर चुकी है और छोड़ चुकी है।

मुंशी जी का मन उधेड़बुन करने लगा—

'यह साहस क्या उसका अपना है! आज तक मैंने किसी चमाइन को ऐसा देखा नहीं। तिस पर उसे क्या मेरी स्थिति नहीं मालूम है! वह क्या नहीं जानती कि जिस दिन चाहूँ मैं उसके मरद रूपा को पिट-वाते पिटवाते खाल उधड़वा लूँ। उसकी मड़ैया खड़े-खड़े फुँकवा दूँ और कोई मेरा कुछ बिगाड़ न सके। तिस पर उसे यह भी मालूम है कि जब उसका मरद मेरे यहाँ काम करता है, तो जब चाहूँ चोरी के इलजाम में उसे साल-छः महीने बड़े घर की हवा खिला सकता हूँ। गवाहों की मेरे लिये कमी पड़ेगी! सारी उम्र तो इसी में बीती है। किसको कैसे सर किया जाता है, यही तो सीखा है मैंने।

जितना ही वे सोचते थे, उतना ही उनका दिमाग भड़कता जाता था। उतना ही उनका क्रोध बढ़ता जाता था।

"इन कमीनों को बर्बाद न कर दूँ तो मेरा नाम जयकिशन लाल नहीं!"

११

किस तरह अपने इस अपमान का बदला लें, किस तरह इस सुगनी को उसकी बदतमीजी का फल चखायें, इसी चिन्ता में मुंशी जयकिशनलाल डूबे हुए थे। यह घटना डेढ़ पहर दिन होते होते घटी थी। मुंशी जी सोच सोच कर तिलमिला उठते थे। उनका खून खौल खौल उठता था। उनकी मुट्ठियाँ बँध बँध जाती थीं। अपने बैठक खाने में बैठे हुए वे क्रोध के आवेश में कभी दाँत पीसने लगते थे, कभी उठ कर टहलने लगते थे। वह टहलना क्या था! तेजी से चक्कर काटने लगते थे, जैसे पिंजड़े में बन्द हिमालयन भालू को किसी ने लकड़ी से कोंच कोंच कर चिढ़ा दिया हो, और अपने अपमान का बदला लेने के लिये वह बौखला उठा हो, पर पिंजड़े का बन्धन वह तोड़ नहीं पाता! कभी इधर और कभी उधर चक्कर काटता रह जाता है। उसकी आँखों से

आग की ज्वाला निकलती रहती है अगर अभी पिंजड़े के बन्धन से छूट जाय तो उसे छेड़ने वाले को वह अपने तेज नखों और दाँतों से चीर फाड़ कर धज्जी धज्जी उड़ा दे। तब मालूम होगा कि स्वतन्त्र विचरण करने वाले किसी रीछ को छेड़ने का क्या नतीजा होता है, पर अपनी लाचारी में वह पिंजड़े में ही चक्कर काटता रह जाता है। मुंशी जयकिशन लाल का जब क्रोध का आवेश बढ़ जाता, तब उठ कर इधर से उधर और उधर से इधर टहलने लगते थे, जैसे उनके पैरों के नीचे आग हो, उनके तन में भी आग भरी हो कि एक क्षण के लिए वे रुके नहीं कि तन मन दोनों भस्म हो जायेंगे!

उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह वे इसका बदला लें। वैसे वे अभी चाहें तो सुगनी और रूपा को पिटवाते पिटवाते अधमरा कर के छोड़ दें। सोचते---उनके समर्थकों में अभी इतनी ताकत है कि सुगनी और रूपा के समर्थन में जो आयेगा, उसे दो-चार महीने के लिए अस्पताल की चारपाई पर डलवा सकते हैं और बाद में जेल की हवा भी साल छः महीनों के लिए खिलवा सकते हैं। पर उनको सबसे बड़ा डर था अपनी इज्जत का! अगर अभी कोई इस तरह का कदम उठाते हैं, तो बात फटेगी—आखिर किसलिए मुंशीजी इतना आपा खो बैठे हैं! और इस सवाल का जो उत्तर है, वह मुंशी जी के लिए भीषण नर्क की ज्वाला से कम नहीं है। शायद पौराणिक गाथा की रौरव नर्क की यातना भी उन्हें इतना विचलित नहीं करती, जितना कि इस 'किसलिए' प्रश्न का उत्तर!

"एक अदना कौम की औरत मुंशी जयकिशन लाल को थप्पड़ मार दे ! उन जयकिशन लाल को, जो समूचे गाँव के सर्वेसर्वा थे। जिनकी तरफ उंगली उठाने का भी कोई साहस न करे। गाँव में बाम्हन हैं, छत्री हैं और भी जातियाँ हैं, मुंशीजी को खड़े-खड़े खरीदने वाले बनिये हैं, पर सब कुछ होते हुए भी मुंशी जी के सामने आज तक सभी झुकते आ रहे थे। पहले सरकार के मुलाजिम थे और अब सरकार में उनकी और भी कद्र बढ़ गई हैं, जैसे उनके सगे-सम्बन्धी हों। और हों भी क्यों नहीं,मुंशी जी जिसे चाहें अपने गांव का समूचा वोट दिला सकते हैं, फिर मुंशीजी की कद्र एम० एल० ए० महोदय न करते तो कौन करता ? सिर्फ कद्र की ही बात नहीं, वोट के समय मुंशीजी ने अपनी मुट्ठी गर्म की थी, उस क्षेत्र के कांग्रेस की ओर का सारा प्रचार मुंशीजी के हाथ में था और उन्होंने उसमें अपना हिस्सा अलग निकाल लिया था। किसी भी काम को केवल हाथ झाड़ कर करने को उनका नियम नहीं था। इस बारे में जब कभी प्रसंग छिड़ जाता, और अगर अपने अन्तरंग मित्रों के साथ बैठे रहते, जिनके साथ उनकी घट-घट थी, तो कभी मौज में आ कर कह बैठते थे—'भई हम तो उस जात के हैं, जो धूल में से घूस पैदा कर ले। मरे आदमी से भी तहरीर वसूल कर लें। और फिर किसी जिन्दे आदमी की क्या बात ! यहां तो अकल का जोर है।'

फिर मगन होकर एक किस्सा सुनाने लगते थे कि किस प्रकार एक राजा के यहाँ कोई मुंशीजी मुलाजिम थे। राजा उन्हें जिस जगह पर रखता, वहाँ पर वह अपने लिए आमदनी की ढेर लगा लेते। अपना घर

भर लेते। आखिर राजा उनसे तंग आ गया। बोला—'मुंशीजी, तुम बहुत आमदनी करने वाले बनते हो। अब ऐसी जगह तुम्हें रख देता हूँ जहाँ से तुम एक पैसा भी पैदा नहीं कर सकते। जो तनख्वाह बँधी है, वही पल्ले पड़ेगी।' मुंशीजी ने हाथ जोड़ कर कहा था—'सरकार हमें कहीं भी रख दीजिये, बस अपनी खिदमत में रखिये, फिर यह तो कायथ की खोपड़ी है, जहाँ जायेगी दो पैसे पैदा कर लेगी।'

"राजा ने उन्हें समुद्र के किनारे लहरें गिनने पर लगा दिया। बोले—अब पानी की लहरें गिनो, यहाँ तुम्हें कोई दो कौड़ी भी देने वाला नहीं है, परन्तु लाला थे आखिर लाला! उन्होंने वहां भी रुपयों का ढेर लगा दिया। जितने जहाज उधर से गुजरते, उन्हें किनारे पर आने नहीं देते। कहते—'सरकारी हुक्म से पानी की लहर गिन रहा हूँ। जहाजों की हरकत से इसमें बाधा पड़ेगी। और इस तरह दबाव में डाल कर वे मनमाना पैदा करने लगे। राजा भी उनकी बुद्धि के कायल हो गये।'

और इतना कह कर मुंशीजी एक ठहाका लगाते। 'यह है अक्ल! इसे कहते हैं बुद्धिमानी।' सो इसी बुद्धिमानी के बल से उन्होंने अपना वजन बना रखा था कि कोई चूँ तक उनके खिलाफ न कर सके और ऐसे प्रतापी मुंशीजी का अपमान एक अदनी चमाइन कर बैठे। और वह अपमान कैसा कि उसकी चोट से उनकी रूह तक कांप उठती है।

दोपहर हो गया। परन्तु जैसे उन्हें नहाने-खाने की सुध ही न हो। उनकी छोटी नतिनी आकर बार बार बुला गई—

"बाबा, चलो खाना खा लो। अम्मा बुला रही हैं।"

पर मुंशीजी का ध्यान नहीं टूटा।

फिर उनका चिल्म चढ़ाने वाला खिदमदगार सहमते-सहमते बोला—

"बाबूजी, मल्किाइन जीमने के लिये बुला रही हैं।"

पर मुंशीजी ने उसे डाँट कर भगा दिया। वह बेचारा सहम कर हट गया। वैसे डाँट और कभी कभी मार भी उस पर पड़ती ही रहती थी, यह कोई नई बात नहीं थी, पर आज तो उसने कोई गलती भी नहीं की थी, न कोई ऐसा काम, जिससे मंशीजी इस तरह से डाँट बैठें।

वह सहम कर उनके सामने से हट गया।

मंशीजी अपमानकी ज्वाला में फुंके जा रहे थे,उनका ध्यान जैसे सारी दुनिया की ओर से हट गया हो, उनके सामने एक ही कटु सत्य जलते अंगारे की तरह उन्हें भस्म कर रहा था—पूरी ताक़तसे पड़ा हुआ थप्पड़! एक नान्ह कौम की नाचीज चमाइन के हाथों के करारे तमाचे!

अपने पैरों को उन्होंने जोर से धरती पर दे मारा, जैसे उनके मार्ग में अगर धरती भी आड़े आयेगी तो उसे भी अपने पैरों की चोट से छिन्न-भिन्न कर देंगे। उसे भी अपने पैरों की ठोकर से दो अंगुल नीचे ठेल देंगे।

भीतर उनकी पत्नी बैठी हुई उनकी बाट जोह रही थी। मुंशीजी जब तक न खायें तब तक औरतें कैसे खायें। मुंशीजी की पतोहू चौके

में बैठी इन्तजार कर रही थी—'बाबूजी कब आयें और जीमें। इस चौके से तो नजात मिले। जरा इस उमस से तो राहत मिले!'

जब काफी देर हो गयी, दोपहरी ढलने लगी तब जयकिशन लाल की पत्नी से नहीं रहा गया—क्या बात है जो आज अभी तक भोजन करने नहीं आये। नौकर के जरिये उन्हें इतना तो पता लग गया था कि वे बहुत गुस्से में हैं, पर किस बात पर इतना क्रोध किये हैं, किस पर उन्हें इतना क्रोध है, इसका कुछ भी आभास नहीं था।

"मुंशियाइन, बैठकखाने में नहीं जाती थीं, यद्यपि उनकी उम्र पैंतालिस के पार हो चुकी थी। बुढ़ापे के लक्षण उनमें स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। सर में काले काले बालों के बीच से कहीं-कहीं सफेद बाल साफ झलक रहे थे। जैसे किसी स्कूली बच्चे ने काले स्लेट पर पेन्सिल से इधर उधर लकीरें खींच रखी हों। तिस पर कुल मिला कर उन्हें आठ बच्चे हुए थे: जिनमें तीन लड़कियां और एक लड़का जीवित था और सभी बचपन में ही मर गये थे। इन आठ संतानों के सिवा दो बार उनका गर्भपात हो गया था। इन सभी बातों का उनके स्वास्थ्य पर असर पड़ा था। साथ ही मुंशीजी के चरित्र के बारे में उन्हें राई रत्ती मालूम था—किस चमाइन से उनका क्या सम्बन्ध था, किस कहारिनको मुंशी जी अपने पैसे से खरीद कर साड़ियाँ दिया करते थे, पटवारगीरी के जमाने में जब तहसील में टिकते थे, तब स्थायी रूप से कहाँ उन्होंने बनियाइन को रख छोड़ा था और भी बहुत सी बातें थी जो मुंशियाइन को मालूम थीं। उसका भी उनके शरीर पर असर पड़ा था और अब इस

पैंतालिस की उम्र में ही वह सूखी हुई लौकी सी हो गयी थीं, फिर भी वे परदे में रहती थी। बाहर बैठकखाने में वह तभी जाती थीं, जब कोई बहुत जरूरी काम आ पड़े और सो भी तब, जब वहाँ कोई न हो, या मुंशीजी अकेले हों, तभी वे जाती थीं।

आज जब मुंशीजी को खाने में इतनी देर हो गयी, बच्ची आकर लौट आयी, नौकर झिड़की खाकर सहम कर चला आया, तो इधर-उधर झाँक-झूँक कर जब मुंशियाइन ने देख लिया कि और कोई नहीं है, तब वे खुद बैठकखाने में गईं। परन्तु मुंशीजी ने उन्हें नपे-तुले शब्दों में बता दिया कि भूख नहीं है। तुम लोग जाकर खाओ।

बेचारी मुंशियाइन वापस आ गईं और मुंशीजी अपने ताने-बाने में फिर उलझ गये—

"अगर यह बात इस बेचारी को मालूम हो गयी—एक चमाइन के हाथ से उसका मर्द पिट गया! अगर मेरे लड़के को मालूम हो जाय, गाँव घर के और लोग क्या कहेंगे एक चमाइन से उन्होंने छेड़खानी की—यह काम तो उनकी नजरों में कुछ बुरा नहीं था,ऐसा तो कौन नहीं करता—दयाशंकर दूबे, लछिमन सिंह, जोरावर सिंह; कौन ऐसा है, जो दूध का धोया हो, और सो भी आखिर ये नान्ह कौम की औरतें हैं किसलिये! पर इस तरह से उनके हाथों अपमानित होना!

उन्हें यह साफ मालूम होने लगा कि अब पहले वाली बात नज़र नहीं आती है। ये कुछ लौंडे कितने सरहंग होते जा रहे हैं। उनकी नजरों में ऐसे कुछ बदतमीज चमारों की सूरतें घूमने लगीं—गोपी,

परताप, चेखुर और भी कई सूरतें। और उनका अपना हलवाहा रूपा भी तो उन्हीं की गाल का है। बल्कि मैं तो कहूँगा कि इस हरामजादी मुगनी का दिमाग उन्हीं सब की वजह से आसमान पर चढ़ा है, नहीं तो अगर उसका दिमाग नहीं चढ़ा होता, तो हाथ पकड़ने की बात क्या थी अगर सरेआम नंगा करके उसकी······में माघी मिरचे की बुकनी ठुँसवा देता तो भी कोई चँ करने वाला नहीं था, पर इन सबका दिमाग आसमान पर चढ़ रहा है। अभी उस दिन गोपिया वगैरह ने दलमंथन का अपमान भरी बिरादरी में किया। हाँ, दलथंमन का अपमान करना क्या कोई मामूली बात थी! बिरादरी का दंड रूपा से नहीं भरने दिया। और भी कितनी ऐसी बातें हैं कि ये सर उठाते जा रहे हैं। अब कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा। आज उसके खिलाफ सर उठा रहे हैं तो कल औरों के सामने सर उठायेंगे और यह आज की घटना!

बहुत सोच-समझ कर उन्होंने दलमंथन को बुलवा भेजा। साथ ही उन्होंने दयाशंकर, लछिमन सिंह, जोरावर सिंह को भी संदेश भेज दिया कि कुछ जरूरी काम है, आ जायें।

जयकिशनलाल ने इस बीच अपने को शान्त करने की कोशिश की, जिसमें उनके चेहरे से कोई यह न ताड़ जाय कि क्या बात घट चुकी है। जब ये सभी लोग आ गये तो जयकिशन लाल ने कुछ भूमिका बाँधकर कहा-

"अगर हम लोगों को अपनी इज्जत रखनी है, बाप-दादों के समय से चले आते सेत[1] को निबाहना हो, तो हम लोगों को आँखें खोल कर

१—नियम आदि।

चलना चाहिये।"

मुंशीजी की बातें सुनकर सब लोगों ने उनकी ओर देख कर अपनी आँखों ही आँखों में प्रश्न किया कि कुछ खोल कर कहिये तो।

तब तक मुंशीजी का नौकर तम्बाकू चढ़ा कर ले आया। उसके हाथ से चिलम लेकर मुंशीजी ने लछिमन सिंह की ओर बढ़ाया। लछिमन सिंह की आदत थी कि गांव में वे जहां भी जाते अपनी छोटी सी हुक्की साथ लिये रहते। उस हुक्की पर उन्होंने चिलम रख ली और कश मारने लगे। मुंशीजी ने नौकर से झिड़क कर कहा --

"अबे, बकर-बकर मुंह क्या ताकता है। जा बैलों को सारी के पास बैठ। जब बुलाऊँगा तो आना। जा अभी यहां से।"

नौकर सहम कर चला गया—ऐसा न हो कि एक क्षण का भी विलंब हो जाय और मुंशीजी उसे चांटे मारना शुरू कर दें!

जयकिशन लाल ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—

"सवेरे मैं खेत देखता आ रहा था, जिसमें सन बोया है उधर गया, देखा रुपवा की मेहर सुगनी सन की फुनगी काट काट कर खाँची में भर रही है! मैंने उससे पूछा—'तेरे मरद को हमने इसीलिये काम पर रखा है कि तू खेत काट कर ले जाय चोट्टिन कहीं की! और बस इतना कहना था कि कुछ न पूछो। सच कहता हूँ उसे जैसे गुमान हो गया है। घासकी खाँची पर उसने लात मारी और खुरपी फेंक कर वह उठ खड़ी हुई। बोली—तुम हमारी अस्मत पर हाथ उठाते हो।

"और फिर चीखना चिल्लाना!"

इतना कह कर मुंशीजी ने उड़ती हुई नजर लोगों पर डाली। अपनी बात का प्रभाव देखना चाहते थे। आगे उन्होंने कहा—

"यह बात मैं इसीलिए सब लोगों से कह देना चाहता हूँ कि वह तो ठहरी चमाइन और फिर उसे अपनी इज्जत का क्या ख्याल। औरत की जात, कोई भी बात कहेगी तो झट लोग शुबहा करने लगेंगे। पर एक बार मैं और कह देना चाहता हूँ। अब इस तरह से हम लोग हट जायेंगे तो अदब-कायदा तो दूर रहा, अब ये चाहते हैं कि अपने सरीखे सब को रजील बना कर छोड़ दें।"

तीनों आदमियों ने मन ही मन महसूस किया कि जयकिशन लाल किस बात की भूमिका बाँध रहे हैं। वे अच्छी तरह समझ गये कि मुंशीजी ने सुगुनी के साथ छेड़खानी की है, और वह अन्य औरतों की तरह इनके कब्जे में नहीं आयी है, या अगर आई भी है तो उसने समर्पण नहीं किया। आखिर तक विरोध ही किया होगा। तभी मुंशीजी के मुँह से इस समय ऐसी बातें निकल रही हैं, पर ऊपर से उन लोगों ने इस बात को अपने मन में दबाए रखा।

दलमंथन ने कहा—"बाबू, हम लोग तो पहले ही आप से बोले थे कि यह रूपा एक ही नमकहराम है। ऐसे आदमी को साथ मत रखिये। जरा भी पेट भरा नहीं कि चौआई सूझने लगती है, और वह रांड़ सुगनी—सत्तर जगह से घूम कर तो आई है! और आज सतवन्ती बनती है।"

लछमन सिंह—"यह बात रूपा के लिये ही नहीं है। गोपिया तो

सबसे ज्यादा मगरूर है। वही इन सब को भड़का रहा है। बात यह है कि उसके पास दो-चार बीघे जमीन बची है, उसी का उसे गरूर है कि अगर उसे कोई बन्नी-मजदूरी न दे तो भी वह कमा-खा लेगा।"

फिर दलथंभन की ओर देख कर कहा—"तुम भी अब वैसे ही रह गये, हम तो पहले समझते थे कि चमार हो तो क्या, पर जरा दम रखते होगे। पर उन लौंडों के सामने चीं बोल दिये। यही है तुम्हारा चौधरियाव!"

दलथंभन के दर्प पर चोट लगी। चमार के घर में जन्म लेकर भी उसने अधिकार सुख भोगा है। सारी बिरादरी को उसने नचा डाला है। बोला—

"बाबू साहब, हम तो मुंशीजी भइया का मुँह ताक रहे थे। मैंने पहले ही इनसे कहा था कि रूपा को अपने काम पर से हटा दीजिये। मौका पाकर वह आपके घर में सेंध तक डलवा सकता है, पर न जाने क्या सोच कर ये चुप लगा गये। और रही उन लौंडों की बात; सो अभी उन्हें सर करने का दम दलथंभन में है।"

लोगों के इस बात के समझने में देर नहीं लगी कि क्या सोच कर मुंशीजी ने रूपा को काम पर से नहीं हटाया था और वह था उसकी स्त्री सुगनी की उन्मत्त जवानी और उसका गदराया शरीर!

पर बात को बदल कर जोरावर सिंह ने कहा—

"मैं आप लोगों से साफ कहे देता हूँ, इस तरह घिसर-पिसर करने से मामला हल नहीं होता। कितने होंगे ये लौंडे? दस को तो मैं

अकेले जमीन पर सुला दूँगा।"

यह कह कर उन्होंने अपनी मूंछों पर हाथ फेरा।

काफी देर तक फिर चारों आदमी आपस में बातें करते रहे। जब अलग हुए तो चारों सन्तुष्ट थे जैसे किसी निर्णय पर पहुँच गये हों—वह निर्णय जो कि उन्हें स्थायी जीत देने वाला हो!

卐

१२

सुगनी का वह रूप देख कर रूपा और गोपी दोनों अवाक रह गये—क्या कारण है, क्या घटना घटी, जिसने सुगनी को इस रूप में ला दिया है। भावी आशंका से दोनों क्षण भर के लिये जैसे स्तब्ध रह गये। अभी क्षण भर पहले तक जो हँसी-खुशी थी, जो हलका-फुलका वातावरण था, वह सहसा घोर आशंका में परिवर्तित हो गया, जैसे सहसा भूकम्प के धक्के से धरती फट जाय, हरी-भरी फसलों के स्थान पर फटी हुई धरती से पानी, कीचड़ और बालू की बौछारें निकलने लगें।

गोपी ने हुक्के को एक तरफ टिका दिया, जैसे वह इस स्थिति को समझ पाने के लिये सहारा ढूंढ़ रहा हो। रूपा हतप्रभ सा मुँह फाड़े ताकता रह गया। उस क्षण भर के संधि-काल में उसके मस्तिष्क में कई बातें घूम गईं—'किसने क्या कहा होगा ? दो सूरतें खास तौर पर उभड़

कर उसको नजरों के सामने आई—एक जयकिशनलाल, दूसरा दलथंभन चौधरी ! किन्तु वह कुछ निर्णय नहीं कर पाया ।

गोपी ने तब तक अपने को प्रकृतिस्थ कर लिया था । पूछा—

"क्या हुआ भौजी, क्या बात है ?"

रूपा ने भी फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखा, जैसे वाणी अवरुद्ध हो गयी हो । उसकी आँखें, उसका मुँह, उसका अंग-प्रत्यंग और उसके रोम रोम तक प्रश्न कर पूछ रहे हों—

"क्या हुआ ?"

सुगनी ने उसी रूप में विक्षिप्त सा कहा—

"इस गाँव में किसी की इज्जत नहीं रहने पायेगी ! दिन दहाड़े राहजनी पड़ी हुई है !"

बिजली का करेंट जैसे अचानक छू कर सारे शरीर को झकझोर जाय, रूपा और गोपी तिलमिला उठे । एक साथ पूछा—

"कौन है वह कमीना ?"

गोपी ने फिर तीव्र स्वर में कहा—

"तुम नाम बताओ उसका, चाहे वह लाट साहब का नाती होगा, तो भी हम उसका खून चूस कर पी जायेंगे । हमारी इज्जत पर ठोकर मारने वाला चाहे कोई क्यों न हो, उसे इसका फल अभी मिलेगा ।"

गोपी की आँखों से जैसे अंगारे बरस रहे थे । उसकी गरदन की तनी हुई नसें, खिची हुई भौंहें और हाथों की कस कर बँधी हुई मुट्ठियाँ, भिंचे हुए ओठ जैसे उसके अन्तर के आवेश और उसके दृढ़ संकल्प की

घोषणा कर रहे हों।

रूपा और गोपी को आवेश में देख कर सुगनी का क्रोध जैसे कुछ ठंढा पड़ गया हो। स्वभाव से वह गंभीर स्त्री थी। अपनी छोटी सी जिन्दगी में उसने काफी चढ़ाव-उतार देखा था। इसी उम्र में उसके दो दो बार व्याह हो चुके थे, पहले व्याह का तो वह 'सुख-दुख उतना नहीं भोग पायी, पर दूसरे व्याह को लेकर जो हंगामा मचा था, उसके पति रूपा की जो बिरादरी द्वारा सांसत हुई थी, तथा उसी बात को लेकर अभी तक जो कशमकश और खींचतान चल रही थी, इन सब घटनाओं ने उसे और भी गंभीर बना दिया था। पर आज मुंशी जयकिशन लाल द्वारा छेड़े जाने पर, उस समय तो उसने संतुलित मस्तिष्क से अपनी रक्षा की थी, उनका प्रतिरोध किया, किन्तु जब वह घटना गुजर चुकी तो उसका धैर्य जैसे टूट गया हो, ठीक उसी तरह जैसे जंगल के दो प्राणी आमना सामना हो जाने पर, जब उनमें ठन जाती है, तब मरणान्तक युद्ध में लिप्त हो जाते हैं। उनके शरीर पर कहाँ चोट आ रही है, कौन अंग नुच-चुथ रहा है, कितना खून बह रहा है, इस तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता और जब उनमें से एक पराजित होकर दम तोड़ देता है, तब दूसरा क्षत-विक्षत शरीर लेकर निढाल होकर पड़ जाता है, उसका तन-मन शिथिल हो जाता है। इसी तरह मुंशीजी की छेड़खानी पर प्रतिरोध करते समय और उसके फलस्वरूप उनके मुंह पर चांटा मारते समय तक तो सुगनी का तन-मन अपनी रक्षा में जुटा था, फिर जब वहाँ से चली थी, तब भी उसका मन क्रोध से भरा था, किन्तु वह क्रोध मुंशीजी पर

तो था ही, अपने पर भी था। क्यों ऐसी कौम में पैदा हुई, जिसकी इज्जत लोगों ने दो कौड़ी की बना रखी है! क्यों निर्धनता का भीषण अभिशाप लिये वह पैदा हुई है! वही क्या, उसके सरीखे क्यों इतने सारे आदमी बे-घरबार, खानाबदोश और इतने गरीब हैं कि हर कोई सहानुभूति के नाम पर उनसे नाजायज फायदा उठाने की सोचता है, उनके तन का और मन का सौदा करने के मनसूबे बाँधता है आदि। इन्हीं तरह की बातों को सोचते-सोचते जब घर पहुँची थी, तब क्रोध में उन्मत्त हो रही थी और रूपा और गोपी के सामने उबल पड़ी थी।

किन्तु जब उसने गोपी और रूपा को क्रोध में देखा, उसका मन कुछ शान्त हो गया। उसके अन्तर्मन को जैसे अव्यक्त सान्त्वना मिली हो कि हमारी भी सार-सभार करने वाला, हमारी भी इज्जत के लिये मर मिटने वाला कोई मौजूद है।

जैसे उसको इन विचारों से कुछ राहत मिली हो, कुछ आश्वस्त और शान्त हो कर उसने सारी कहानी बयान कर दी; शुरू से लेकर अन्त तक जिस रूप में घटना घटी थी!

सुन कर रूपा और गोपी का मन जैसे मुंशी जयकिशन लाल के प्रति क्रोध और घृणा से भर उठा, वैसे ही उनका मन सुगनी के प्रति गर्व की भावना से भर उठा—जैसे उनके अन्तर्मन में कोई उद्घोष कर रहा हो—

"आज तुमने न केवल अपनी बल्कि सभी गरीबों की इज्जत को बचा

लिया है। तुमने आज मुंशी जयकिशन लाल के गाल पर तमाचे नहीं मारे हैं, बल्कि गरीबी ने अपने सम्मान की रक्षा के लिये, अपनी इज्जत, अपनी अस्मत की हिफाजत के लिये अमीरी तथा पैसे के मुँह पर थप्पड़ मारा है। हरामखोर के मुँह पर मेहनतकश ने थप्पड़ मारा है।

कुछ इसी तरह के भाव दोनों के हृदय में उठ रहे थे। रूपा और गोपी दोनों कुछ देर तक भावना में जैसे खोये रहे। आज तक उनके सामने ऐसी मिसाल नहीं आयी थी, जिसमें किसी गरीब स्त्री ने, किसी सम्पन्न का इस तरह से मुकाबला किया हो।

उनकी नजरों में कितनी ही सूरतें घूम गईं एक···दो···तीन.... चार। कितनी ही सूरतें, बेबस लड़कियाँ,बेबस स्त्रियाँ नान्हों की, जिन पर कभी दबाव से, कभी प्रलोभन से इन बड़ी जात वालों ने जुल्म ढाये थे, उन पर मनमाना अत्याचार किया था, उनकी इज्जत और अस्मत से खिलवाड़ किया था—अपने बड़प्पन के नशे में, अपनी ऊँची जात के अभिमान में, अपने दर्प और सामर्थ्य के अभिमान में।

और ये गरीब प्रतिरोध नहीं कर पाये थे, जैसे उन्होंने सोचा हो—हम जन्म से ही इसी तरह लांछित और प्रताड़ित होने के लिये पैदा हुये हों! हम जन्म से ही इसी तरह नीच और कमीना कहलाने के लिये पैदा हुये हों! हम जन्म से ही अपमान बर्दाश्त करने के लिये हों और हम जन्म से ही गुलामी का बोझ ढोने के लिये हों!

उनके इस भाव ने जैसे बड़ी जात वालों को उन पर जुल्म करने के लिये और भी उकसावा दिया हो, उन्हें और भी छूट दी हो, उन्हें और

भी प्रोत्साहित किया हो कि खुल कर खेलो, कोई तुम्हारे रास्ते में आने वाला नहीं है, जैसे रास्ते में पड़े मिट्टी के छोटे ढेले को हर कोई मौज में एक ठोकर मार देता है, किन्तु पत्थर को ठोकर मारने का कोई दुःसाहस नहीं करता।

किन्तु अगर उनका शुरू से ही प्रतिकार हुआ होता, उन पर ऐसी चोट पड़ी होती तो……

और अगर यह थप्पड़ पहले ही उठ पड़ा होता, तो इतना अपमान सहना पड़ता! इतनी मजदूरिनों-बनिहारिनों को अपनी अस्मत इन तथा-कथित बड़ी जात वालों के सामने लुटाने की नौबत आती!

बहुत देर तक दोनों जैसे खोये रहे, दोनों के विचार जैसे मौन-मूक आपस में टकराते रहे।

फिर गोपी ने सर उठा कर गर्व और आदर भरी दृष्टि से सुगनी की ओर देखा, जैसे वह एक साधारण नारी नहीं, सृष्टि की अधिष्ठात्री देवी, महिषासुर का वध करने वाली दुर्गा के सामने बोल रहा हो—

"भौजी, आज न तुमने अपनी ही इज्जत रख ली, बल्कि हमारी भी, हमारी समूची जात की और सभी गरीबों की।"

फिर उसी स्वर में बोला—

"और तुम्हारी इस इज्जत की रक्षा के लिये हम अपने प्राणों को होम देंगे। तुमने हमें दिखा दिया है कि पहले स्त्री आती है, पीछे मर्द। मैं जानता हूँ कि इसका भुगतान हम लोगों को अपने सर्वस्व की बाजी लगा कर देना होगा, पर हम हर मूल्य पर अपनी इज्जत

बचायेंगे, वह इज्जत चाहे स्त्री की अस्मत हो, चाहे हमारी मेहनत का मूल्य हो, किन्तु हम अपना सर्वस्व देकर भी उसकी रक्षा करेंगे।"

कुछ देर तक तीनों पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल और स्तब्ध रहे जैसे अभी जो बातें हुई हैं, उसकी गुरुता उन पर छायी हो।

धीरे-धीरे कुछ देर में वातावरण प्रकृतस्थ हो गया। तीनों इस बात पर विचार करने लगे कि अब आगे के लिये कौन सा कदम उठाया जाय। इसके लिये जरूरी था कि अपने और साथियों से भी इस पर परामर्श कर लिया जाय, क्योंकि अभी जो घटना घटी है, वह उस गांव के इतिहास के लिये अभूतपूर्व थी। अभी तक तो जो कुछ हुआ है, अन्याय, अन्धेर, जोर-जुल्म, सबको ये छोटी जातियाँ या तो अपने भाग को कोस कर सहती जाती थीं, या अपने लिये परम्परा से चली आती मन्यता मान कर सर झुका लेती थीं। किन्तु सुगनी ने मुंशी जयकिशन-लाल के मुँह पर जो थप्पड़ मारा था, वह जैसे आज तक चली आती परम्परा के विरुद्ध जबर्दस्त विद्रोहका उद्घोष हो, जैसे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये बन्दूक से निकली हुई पहली गोली की गर्जना हो, जैसे आततायी सेनापति के नेतृत्व में देश-देशान्तर को रौंदती आगे बढ़ती फौज के सम्मुख अविचल और अचंचल जाँनिसार सैनिकों के मुँह से निकला गम्भीर स्वर हो—'हाल्ट'!

थोड़ी ही देर में वहाँ परताप और चेखुर भी आ गये। अमिरती भी आ गयी और जब ये सभी आदमी एकत्रित हो गये तो आपस में विचार-विमर्श करने लगे कि अब हम लोगों को कौन सा कदम उठाना

चाहिये, जिसमें आत्मरक्षा करते हुए हम लोग जीत हासिल कर सकें।

अमिरती ने कहा—"हम लोगों को यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये, कि मुंशी जी इसका बदला जरूर लेंगे। अभी तक उनका मन बाढ़ पर था, और आज जब पहली बार उनके रास्ते के सामने पत्थर की चट्टान पड़ी है तो वे अपनी पूरी ताक़त से बाधा को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।"

परताप—"अकेले लाला की बात नहीं, मैं तो कहता हूँ कि इस समय सभी बड़ी जात वाले मुंशीजी का पक्ष लेंगे और यह पक्ष क्या कोई आज नया लेंगे—वे सब तो जहां हम लोगों को दबाने की बात है, हम लोगों का गला काटने की बात है, वहां सदा से ही एक रहे हैं, वैसे चाहे अपने अपने मतलब के लिये आपस में ही खींचतान करते रहें हो, पर इस जगह पर तो वे सभी एक हो जायेंगे।"

गोपी—"यही क्यों, केवल बड़ी जात के ही लोग नहीं, हम लोगों में से भी कुछ लोग उन्हीं के साथ रहे हैं। हमारी ही जात में चौधरी दलथंभन को देखो, जब मौका पड़ता है, उन्हीं लोगों के साथ हो जाते हैं, बल्कि मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि हम लोगों के साथ वह तभी तक हैं जब तक उन्हें इस बात का भरोसा है कि हम लोग उनके दबाव में हैं, उनके अधिकार में हैं, और इस दबाव और अधिकार का नाजायज फायदा उठा कर वह बड़ी जात वालों से अपने लाभ के लिये समझौता कर सकता है। इसलिये वह मौका पड़ने पर उन्हीं लोगों के साथ हो

जायगा ! हमारी ही जात की यह बात नहीं है, और भी छोटी जातियों के जो चौधरी और सरगना हैं, वे अपने मतलब और स्वार्थ के लिये बड़ी जात के कुछ लोगों तथा हाकिम-हुक्कामों के हाथों के खिलौने बने हुए हैं, बल्कि उन सबकी मिसाल हम कुल्हाड़ी के बेट से दे सकते हैं, जो लोहे के साथ गठबंधन करके अपने ही वंश को निर्मूल करता है । उसी तरह के ये चौधरी और सरगना लोग हैं ।"

कहते-कहते गोपी क्षण भर के लिये चुप हो गया, जैसे वह अपनी कही हुई बातों का तारतम्य मिला रहा हो । फिर बोला—

"साथ ही हम लोगों को यह भी समझ लेना चाहिये कि मुंशीजी आज की घटना को किस रूप में लोगों के सामने रखते हैं ।"

चेखुर—"हाँ, वह मुंशी का बच्चा एक ही घाघ है, मेरा तो ख्याल है कि इस बात को वह इस रूप में नहीं रखेगा । वह इतना कमअकल नहीं है कि अपनी बेइज्जती का ढिंढोरा पीटता फिरे कि मैं नान्ह कौम की एक औरत से पिट गया ।"

इतना कह कर जैसे अपनी बात के समर्थन के लिये उसने अपने साथियों की ओर देखा ।

परताप—"मेरा भी यही ख्याल है कि इस घटना को वह घुमा फिरा कर दूसरे ही रूप में रखेगा !"

अमिरती—"यह तो एकदम सीधी बात है । यह थोड़े ही कह सकेगा कि मेरी नीयत खराब हो गयी थी और मेरे मुँह पर थप्पड़ पड़े । मैं तो समझती हूँ कि वह तो चोरी का इलजाम लगायेगा । अभी तक तो

ऐसे मौकों पर लोग यही करते आये हैं। जहां किसी को साधना रहा, जहाँ अपने मतलब की बात मुँह से निकालनी रही, वहां इनके पास एक ही बात है। चोरी का इलजाम लगा देना। और इस इलजाम को सच्चा साबित कर देने में कितनी देर इन्हें लगती है! थाना-पुलिस इनकी, जेल-हवालात इनकी, हाकिम-हुक्काम इनके, रुपये-पैसे इनके पास, पढ़ाई-लिखाई का जोर इनके पास, फिर झूठ को सच और सच को झूठ साबित करते क्या देर लगती है।"

सुगनी अभी तक चुप थी और सभी की बातों को बड़े गौर से सुन रही थी। उसके मन में एक बात रह रह कर उठ रही थी। इस बात पर तो सहमत थी कि लाला और चाहे कुछ भी बनायें, इस बात को वह भूल कर भी अपनी जबान पर नहीं लायेगा, कि मुँह पर थप्पड़ पड़े हैं, पर इस बात का वह क्या बदला लेगा, चोरी का इलजाम लगा सकता है, पर इतने से ही उसे संतोष नहीं होगा। या चोरी का भी इलजाम लगा सकता है और साथ ही वह मौके बे-मौके अपने आदमियों से पिटवा भी सकता है। फिर अगर उसके आदमी किसी दिन मौका देखकर उसके मरद को या सरगना समझकर गोपी पर ही प्रहार कर दें! और यह तय है कि जब वह लठ्ठबाजों का इन्तजाम करेगा तो बिना हाथ-पैर तुड़वाये उसे संतोष नहीं होगा। इस भावना से सुगनी काँप उठी। उसने कुछ भय-भीत स्वर में कहा—

"चोरी का इलजाम तो वह लगा ही सकता है, पर वह अपने लठ्ठ-बन्दों को भी सरेख सकता है।"

आगे की बात जैसे उसके मुँह से नहीं निकली। सुगनी की बात सुन कर क्षण भर के लिये सभी चुप रह गये। इस बात की भी सम्भावना थी। कुछ देर जैसे वे मौन-मूक इस पर विचार करते रहे। फिर गोपी ने कहा --

"मेरा तो ख्याल है कि इस समय वह ऐसी कार्यवाही पर नहीं आ सकता। और चाहे कुछ हो; इधर इतना तो उसकी समझ में आ ही गया है कि अगर खुद हम जोर-जबर्दस्ती करेंगे तो और चाहे कोई झुक जाय, पर हम लोग नहीं झुक सकते और लाठी का जवाब लाठी से ही मिलेगा।"

उसने अपने सभी साथियों की ओर इस भाव से देखा जैसे एक बहादुर और चतुर सेनापति अपने सैनिकों से किसी गुरुतर प्रश्न पर आँखों ही आँखों पूछे और उसका उत्तर भी स्वयं ही दे दे--"हाँ, हमें विश्वास है कि प्राण रहते तुम कदम पीछे नहीं हटा सकते।"

और उसके जांबाज सैनिक जैसे अपनी भंगिमा से ही उसके विश्वास का समर्थन कर दें।

चेखुर ने कहा--"जरूर, इस समय वह फौजदारी पर नहीं आयेगा, और न मारपीट के झमेले में ही जायेगा। हां, चोरी का इलजाम वह लगा सकता है।"

गोपी--"हम लोगों को हर तरह से तैयार रहना चाहिये। अपना कदम सोच-समझ कर उठाना चाहिये। एक बात और। हमलोगों को इस समय केवल अपनो ही नहीं, अपने सरीखे सभी जितने लोग हैं, चाहे वे किसी भी जात के क्यों न हों, उनका समर्थन प्राप्त करना चाहिये। उन्हें

इस बात के समझाने की जरूरत है कि यह मुंशी जयकिशन लाल और हमारा ही मामला नहीं है, बल्कि सारे गरीबों का, बड़ी जात वालोंके साथ मोर्चा है। फिर इन बातों से केवल हमीं लोग तो परेशान नहीं, केवल हमीं लोग तो इनके अन्याय-अत्याचार का भोग नहीं भोग रहे हैं, बल्कि नाई है, धोबी हैं, कहार हैं, लुहार है, और भी इसी तरह के लोग हैं, जिन्हें अगर इस बात का विश्वास हो जाय कि हम लोगों की जीत हो जायेगी तो वह हमारे साथ हो जायेंगे। साथ ही, अगर वे यह समझ जाते हैं कि सभी गरीबों की, सभी छोटी जात वालों की भलाई इसी में है कि वे एक हो जायँ। उनका सुख-दुख, उनका मान-अपमान, उनकी घटती-बढ़ती सब एक साथ जुड़ी है तो फिर हम सभी एक साथ कन्धा भिड़ा कर अन्याय-अत्याचार के खिलाफ मोर्चा ले सकेंगे और फिर हमारी एका की ताकत का मुकाबला करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। तब हमारी जीत निश्चित है।"

卐

१३

कार्तिक का महीना चल रहा था। हवा में थोड़ी थोड़ी ठंढक थी। दिन में शाम के समय तथा रात के पहले पहर में तो कोई विशेष सर्दी नहीं मालूम होती थी, किन्तु भिनसारा होते-होते सर्दी मालूम होने लगती थी। हलकी गुलाबी सर्दी बड़ी प्यारी मालूम होती थी, थोड़ी-थोड़ी सिहरन, जैसे संध्या समय किसी बगीचे में चहल कदमी करते समय अचानक किसी तरुणी का अंचल फरफराकर हवा में उड़ कर मुंह और सर पर लिपट जाय। और सारे शरीर में हल्का रोमांच हो जाय। इस हल्की गुलाबी जाड़े से जैसे जग की आत्मा तृप्त हो उठी हो।

मुंशी जयकिशनलाल अपने बैठकखाने के चबूतरे पर एक चारपाई पर बैठे हुए थे। सूरज अभी अभी निकला था। उनके बैठक के चबूतरे पर नीम की छाया लम्बी होकर दूर तक चली गयी थी, उनके बैलों के बांधने के

मकान, कुएँ की जगत, सब पर वह छाया लम्बी हो कर पड़ रही थी। वह पतली और धूमिल छाया ऐसी मालूम होती थी जैसे कोई नई-नवेली दुलहन महीन चादर ओढ़े खड़ी हो और उसके घूंघट के भीतर से झिल-मिल झलकता हुआ उसका गोरा मुखड़ा और भी सम्मोहक हो उठा हो जैसे चन्द्रमा के ऊपर सफेद बादलों की पांतें गुजर रही हों।

जयकिशनलाल विचारों में खोये थे। रह रह कर एक विचार उनके मन में उठता था और नदी के किनारे टकराने वाली लहर की भांति पल भर में ही वह विलीन हो जाता था। पिछली घटनाओं पर उनका मन बार-बार भटक जाता था। और इधर लगभग दो महीने से वे परेशानियां झेल रहे थे। सुगनी वाले मामले को ले कर जो तनातनी चली थी, उसको उन्होंने तथा उनके साथियों ने पहले तो सोचा था, कि अपनी ताकत से दबा देंगे, अथवा इस तरह के जो सैकड़ों मामले पहले होते रहे थे, उन्हीं की तरह यह भी दो-चार दिन में शान्त हो जायेगा, परन्तु कहाँ से शुरू हो कर कहां बात पहुंची और उस घटना ने कैसा रूप धारण कर लिया—उसे सोच-विचार कर मुंशी जी परेशान से हो उठे। उनका सभी काम धाम बन्द है। दो महीने से उनके खेतों में हल नहीं चला। बैलों की देखभाल नहीं हुई। और तो और, नाई, धोबी, लुहार सभी जैसे एकमत हो कर सामूहिक रूप से उनका बायकाट कर रहे हों। ये बातें वे जितना ही सोचते थे, उतना ही स्पष्ट रूप से उनके मन में प्रश्न उठ रहा था—क्या से क्या हो गया! जिस बात की कल्पना सपने में भी नहीं की जा सकती थी, वही प्रत्यक्ष हो गई। अभी-अभी दो महीने

पहले तो मेरे डर से जैसे गांव का जर्रा-जर्रा कांपता रहता था। कहने के लिए अपने को कोई कुछ भी लगा ले, पर मेरे सामने मेरी बात काटने की किसकी मजाल थी! छोटी जाति वालों की तो बात ही क्या, उन्हें तो मैं जैसा चाहता था, वैसा नचा मारता था, अपने को ठाकुर-ब्राह्मण कहने वाले भी मेरी बात को काटने की हिम्मत नहीं करते थे। पीठ पीछे चाहे जो भी कहे।

"पर आज!"

उनके मुंह से एक निश्वास निकल गयी, जैसे जुआड़ी अपना सर्वस्व दाव पर हार कर तेजहीन हो जाता है, वही हालत मुंशी जयकिशन लाल की हो उठी। उनके मन में जैसे अपने ही प्रति धिक्कार की भावना उठ रही हो, अपनी बेबसी पर क्रोध और झुँझलाहट भी हो रहा हो, और मन आत्मग्लानि से डूब रहा हो—कौन कह सकता है कि मैं आज वहीं हूँ, जो अभी कुछ महीने पहले था। आज तो मेरी हालत वैसी ही हो रही है जैसे जहाज चट्टान से टकरा कर चकनाचूर हो जाय, और उसका कप्तान एक तख्ते को पकड़े समुद्र की उत्ताल तरंगों में निराधार बहता चला जाय, उसका सारा तेज और उसकी शक्ति और अधिकार जैसे नगण्य हो उठी हो। बस अपनी प्राण बच जाय, यही सबसे बड़ी लालसा हो। वही तो मेरा हाल हो गया है। जैसे इन बनिहारों और मजदूरों की शक्ति के समुद्र में चकनाचूर हो कर निराधार बह रहा हूँ और किस किनारे लगूँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। पहले चमारों ने मेरा बायकाट किया। हल जोतना, बैलों की सार-संभाल करना, खेतीबारी देखना,

जोतना-बोना सभी काम बन्द कर दिया और फिर नाइयों ने, लुहारों ने, कुम्हारों और धोबियों ने, कहारों ने यहां तक कि एकाएक सभी छोटी जाति वाले मुझसे अलग हो गये और उन सदा से दबाये रजीलों ने अपना ऐसा संगठन बना लिया कि उनसे निस्तार पाना दुश्वार हो गया है। जैसे सन के पतले धागे गुँथ-बंट कर मजबूत रस्सी हो जाते हैं कि मतवाला हाथी भी उसके बन्धन से अपने को मुक्त न कर पाये, कुछ इसी तरह का मेरा हाल हुआ। और मेरा ही क्या, दयाशंकर दुबे, लछिमन सिंह वगैरह के साथ भी यही हाल हुआ। साथ ही चमारों के चौधरी दलथंभन को भी परेशान होना पड़ रहा है। जैसे हम लोग परेशान हो रहे हैं, वैसे वह भी। यहाँ तो जात का, छोटे-बड़े का सवाल ही नहीं रहा — बस सभी बनिहार-मजदूर एक हो गये, और हम लोगों के खिलाफ उन लोगों ने ऐसी मोरचबन्दी कर ली कि लगता है, अब उससे छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। जैसे मत्त गजराज यह नहीं समझता कि कुछ पतली रस्सियों के एक टुकड़े उसकी शक्ति को चैलेंज दे सकते हैं, किन्तु जब वह मोटी रस्सियों में बंध जाता है, तब उसे मालूम होता है कि उन पतली रस्सियों के साथ मिल जाने से उनमें कितनी ताकत आ जाती है। यहां भी वही बात नजर आ रही है। कहां नाचीज कमीने और कहां हम लोग! बस वही हाथी और रस्से वाली हालत हम लोगों की भी हुई है।

इन्हीं विचारों में मुंशी जयकिशन लाल खोये खोये थे। जैसे उनके शरीर से कोई धीरे-धीरे प्राण खींच रहा हो और वे शिथिल होते जा रहे हो, उनकी संज्ञा लुप्त होती जा रही हो, उनकी आत्मरक्षात्मक शक्ति क्षीण

होती जा रही हो और वे बेबस और निःसहाय पड़े हों अपनी रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ।

इन्हीं विचारों में वे खोये खोये थे कि बैलों के सींगों के आपस में टकराने की आवाज से उसका ध्यान भंग हुआ। उसी तरह खोये खोये से अनमने से उन्होंने सर उठा कर उधर देखा। उनके दो बैल अपने अपने अपने माथों को झुकाये हुए, अपने अपने सींगों को क्रोध में एक दूसरे से टकरा रहे थे। उनकी बड़ी बड़ी आंखों में क्रोध उमड़ रहा था। उनकी पूंछें सांप की तरह जैसे बल खा कर इधर-उधर हिल रही थीं। उनके नथनों से फूत्कार निकल रहा था। अपने अगले पैरों से वे धरती खूंद रहे थे।

मुंशीजी ने चारपाई पर बैठे-बैठे ही जोर से 'हट हट' कहा। उठने का उपक्रम किया, पर उठे नहीं। पास में पड़े मिट्टी के ढेले को उठा कर एक बैल की पीठ पर फेंक मारा। तनिक कनमना कर वह बैल एक ओर हट गया। फिर भी वह अपने सींगों को हवा में झटका मार रहा था, जैसे उसके मन का क्रोध शान्त न हुआ हो। दूसरा बैल, दो-चार क्षण तक उसी तरह अपने सींगों को आक्रमणात्मक मुद्रा में झुकाये रहा, दो-एक बार अपनी गर्दन को झौंटा, दो-एक फूत्कार मारी और फिर एक ओर सरक गया। फिर जैसे कुछ हुआ ही न हो, नाँद के ऊपर पड़े भूसे को फूँ-फूँ कर के सूँघा और उसमें से उठती दुर्गन्ध के कारण अपना मुँह एक ओर फेर लिया। फिर निश्चिन्त होकर पेशाब करने लगा। आधी भरी बाल्टी में नल की पतली धार गिरने की तरह सुरर-

सुरर का स्वर हुआ और फिर अपनी गर्दन झुका कर नाभी के पास मुँह ले जा कर चभर-चभर पेशाब पीने लगा। उस खारे पेशाब का स्वाद जैसे उसे रुचिकर नहीं लगा और अपने थुथने को सिकोड़ कर जोर-जोर की सांस खींचने लगा। उसके थुथने सिकोड़ने से उसके हलके पीले-पीले, बड़े बड़े दांत दिखाई देने लगे। काले थुथने और सफेद पर कुछ हलके गुलाबी रंग के ओंठ और मसूढ़ों के बीच से निकले हुए पीले-पीले दाँत : लगता था वे दांत न हों। किसी ने मिट्टी की दिवार पर पीली कौड़ियाँ चिपका रखी हों।

जयकिशन लाल का ध्यान अपने बैलों की ओर गया। वहीं बैल खूंटे से बंधे थे। उनके शरीर की, खास कर पसलियों की हड्डियां उभड़ आई थीं। उनके शरीर का रोआँ घिघरोई हो गया था, जैसे सन की रस्सी का बुना सफेद टाट पानी में लगातार भींग कर हलका पीलापन लिये मटमैला हो जाता है। अभी कुछ ही महीनों पहिले ये बैल कितने मांसल थे, उनका बदन कितना गदराया हुआ था, कितने भरे-भरे थे। उनका मांसल शरीर कितना आकर्षक लगता था। धुले-पुंछे स्वच्छ। उन पर हाथ फेरने से ऐसा मुलायम और स्निग्ध मालूम होता था, जैसे मखमल पर हाथ फेर रहे हों। उनके सींगों में तेल की चिकनाहट। कभी-कभी उनके माथे पर गेरू का टीका। उनको देख कर लगता था जैसे किसी सम्पन्न घर के यत्न से पाले-पोसे बच्चे हों, जिनके मुह और शरीर पर आसूदगी झलक रही हो।

किन्तु आज उनकी दयनीय हालत देख कर मुंशी जयकिशन लाल

का दिल भर आया। उनके बाँधने की जगह पर, बैलों के पेशाब करने से गड्ढे बन गये थे। उनमें बैलों का पीला-पीला पेशाब भरा हुआ था। पास ही गोबर, बैलों के खुरों से कुचल कर इधर-उधर बिखर गया था। कुछ गोबर बैलों के खुरों में समाया था। उनसे हट कर थोड़ी ही दूर पर गोबर का ढेर पड़ा था। उसे उठा कर घूरे पर या खेत में फेंकने वाला कोई नहीं मिला था। इसीलिए बैलों की सारी के पास ही उनका ढेर पड़ा था। देखने से साफ मालूम हो जाता था कि कम से कम दो-तीन दिन का गोबर इकट्ठा हुआ पड़ा है। बासी पड़ जाने से गोबर के ढेर का रंग कुछ हलका मटमैला हो गया था। उसके बीच से बुज्जियाँ उठ रही थीं और कहीं-कहीं गुबरैले उसमें से छोटे-छोटे गोलाकार बना कर निकाल रहे थे। दो-दो गुबरैले गोबर के एक एक गोले टुकड़े को ढकेलने के प्रयास का उपक्रम काफी सुन्दर लगता था। गोबर और पेशाब पर ही बैठने से बैलों के पुट्ठों में दाग पड़े हुए थे। धौरे बैल के पुट्ठों और पेट पर वे मटमैले धब्बे ऐसे मालूम हो रहे थे, जैसे चूने से पुती दीवार जगह-जगह से गिर गई हो और उसमें गीली मिट्टी थोप दी गई हो।

की धुलाई न होने से उनके पुट्ठों में, जांघों में, सींगों के पास किलनी[1] और अठवे[2] पड़ गये थे। सिरोहियाँ[3] और कौवे उन्हें निकाल-निकाल कर खा रहे थे। कभी कोई कौवा किसी बैल की पीठ पर बैठ जाता था। उसे उड़ाने के लिए बैल चंचल हो उठता था। कभी अपनी

१—२—पशुओं के शरीर में पड़ने वाले कीड़े। जूं।

३—पक्षी।

पूँछ पीठ पर मारता था, और कभी अपना सिर झाँटना था। कौवा थोड़ा-सा उचक कर फिर बैल की पीठ अथवा उसके सींग पर बैठ जाता था और फिर अपना सर झाँटने लगता था।

गोबर के ढेर के पास ही राखी का ढेर पड़ा हुआ था। चौका साफ करने वाली कहारिन के न आने से मुंह अंधेरे ही मुंशीजी के घर की औरतें चूल्हे की राख, घर का कूड़ा-करकट आदि वहां रख जाती थीं, ताकि कोई मिल जाये तो गोबर के साथ उसे भी कूड़ेखाने या खेत में फिंकवा दिया जाये। कौवे जूठन के लोभ में अपनी चोंच और पंजों से उस राख के ढेर को कुरेद रहे थे। कभी उसमें उन्हें रोटी का टुकड़ा, कभी भात के दाने,कभी और कोई खाने का सामान मिल जाता था और जब कुछ नहीं मिलता था तो जैसे और क्रुद्ध हो कर अपनी चोंच से उस ढेर को बिखेरने लगते थे। उनके बिखेरने से राख और कूड़े के ढेर में पड़े कागज के छोटे टुकड़े, सूखे पत्ते, तरकारियों के छिलके वगैरह इधर-उधर उड़ कर बिखर जाते थे, जिससे आसपास की गन्दगी और भी बढ़ जाती थी।

देखभाल के अभाव में गायों और भैंसों वगैरह की हालत तो और भी बुरी हो गयी थी। उनकी एक भैंस तो अभी भादों के महीने में ही व्याई थी। मुर्रा भैंस थी और दुधारू। दोनों जून मिलाकर दस सेर दूध तो आसानी से देती थी, थोड़ा और जतन तथा देखभाल करने से बारह सेर तक दूध हो जाता था। परन्तु इन दो-तीन महीनों की अव्यवस्था से वह एक-वक्ना हो गयी थी सो भी कुल मिला कर मुश्किल से दो

तीन सेर दूध दे पाती थी। उसे भी कोई दुहने वाला समय पर नहीं मिलता था। एक गाय गाभिन थी। उसकी भी ठीक से सार-संभाल न होने से बुरी हालत हो गयी थी। उसके दोनों कूल्हे इस तरह से निकल रहे थे, जैसे समतल जमीन में पत्थर के ढोंके उभरे हुए हों। दोनों कोइयाँ धँसी हुई थीं। पसली की हड्डियाँ साफ नज़र आ रही थीं।

भैंसों की नाद के पास सूखा-सूखा भूसा पडा हुआ था। नाँद में से निकाल कर उन्हें वहां रख दिया गया था, जिसमें अब भी सीलन थी और उमसे बदबू निकल रही थी। लगता था, बरसात के पानी में गड्ढे में पड़ी हुई सूखी पत्तियां सड़ रही हों।

मुंशी जयकिशनलाल फटी-फटी आँखों से इस सारे दृश्य को देखते रहे, खोये खोये से, पराजित से, जैसे कोई सशक्त डाकू मारी सम्पत्ति को लूट कर लिए जा रहा हो और बचाव करने का साधन उनके पास न हो। बस पराजित हतप्रभ से ताकते रह जायें।

इसी समय मुंशीजी की दो-ढाई साल की नतिनी आ कर 'बाबा, बाबा' कह कर उनकी गोद में चढ़ गई और उनकी दाढ़ी के बढ़े हुए बालों में अपनी उँगलियाँ फँसाने लगी।

बच्ची के दाढ़ी छूने से मुंशी जी का हाथ भी अपनी दाढ़ी पर चला गया। जहाँ मुंशीजी एक दिन का अन्तर दे कर दाढ़ी बनवाते थे, नाई बिना बुलाये ही आ कर इन्तजार कर रहा है और जयकिशनलाल किसी से बातें करने में मशगूल रहते थे, तो वह बैठा-बैठा इन्तजार करता रहता था, उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ती थी कि मुंशी जी से कहे कि

दाढ़ी बनवा लें और छुट्टी दें। और भी तो दस जगह काम देखना है। जब बहुत देर होने लगती थी, तब डरते-डरते कहता था, सरकार हजामत बनवा लें। और जगह भी मुझे जाना है। और तब मुंशीजी कभी वक्र नजरों से उसकी ओर घूर कर देख देते थे, बेचारा नाई सहम जाता था। या कभी दाढ़ी बनवाने लगते थे।

पर आज दस दिन से दाढ़ी बढ़ी हुई थी। सो भी किसी काम से तहसील गये थे, और वहाँ के नाई से बनवा लिया था। गांव का नाई तो और सभी मजदूरों बनिहारों के साथ दो महीने से मुंशी जी का बायकाट किये हुए था। मुंशी जी की तो दाढ़ी दस दिन की ही बढ़ी हुई थी, किन्तु उनके कुछ साथियों की तो महीने-डेढ़ महीने से अस्तुरे से मुलाकात नहीं हुई थी। उनके मुंह पर बढ़ी हुई रूखी दाढ़ियों के बाल ऐसे मालूम हो रहे थे जैसे घास का बेतरतीब ढेर पड़ा हो। काले-काले बालों में, करीब-करीब आधे बाल पक चुके थे, काले बालों के बीच में सफेद बाल ऐसे मालूम होते थे, जैसे हरी घास के ढेर में जगह-जगह सूखी घास मिली हो और इस तरह वह चितकबरी दिखाई पड़ रही थी।

मुंशी जी के घर में भी यही अव्यवस्था थी। कहार पानी नहीं भर रहे थे। कहारिनें चौका-बर्तन नहीं कर रही थीं। जहाँ मुंशी जी के घर की औरतें दिन में दो-दो बार नहाती थीं, पानी इस तरह से गिराती थीं जैसे नदी के किनारे बैठी हाथों से पानी उलीच रही हों। कहार पानी ढोते-ढोते परेशान हो जाते थे, मन में झुँझलाते-भुनभुनाते; पर ऊपर से कुछ भी कहने का साहस नहीं हो पाता था, जरा मुंशी जी

के कान में भनक गई और ताव खा गये तो खाल उधेड़ कर रख देंगे। यही हाल बर्तनों का था। सबेरे-शाम इतने बर्तन माँजने के लिए इकट्ठे हो जाते थे कि उन्हें माँजते-माँजते कहारिन के हाथ दुखने लगते थे, कमर झुकी झुकी दर्द करने लगती थी. बर्तनों पर झुकी हुई, हाथ में उबसन लेकर रगड़ती रगड़ती जैसे बर्तन के साथ वह भी रगड़ खा रही हो। जैसे उसकी शक्ति भी क्षीण होती जा रही हो, निर्जीव बर्तनों के साथ मानों वह भी निर्जीव प्राणी हो।

किन्तु आज न तो घर में एक घड़ा पानी भरने वाला था और न बर्तन मांजने वाला। शाम का अंधेरा होने पर मशी जी के घर की औरतें कुएँ पर से घड़ा दो घडा पानी खीच लेतीं, पर उनके अनभ्यस्त हाथों में रस्सा एसो मालूम होता कि घड़े के साथ वे भी जैसे कुएँ में गिर पड़ेंगी। कभी-कभी मुंशी जी हो घड़ा दो घडा पानी निकाल देते, पर घड़े दो घड़े खींचने से ही उनके हाथ अगियाने लगते और वे हाँफने लगते।

वहां बैठे बैठे मशी जयकिशनलाल को एसा मालूम हुआ जैसे वे किसी श्मशान में बैठे हों, उनके चारों ओर भयानक नाश, तथा काट खाने वाली मुर्दनी छायी हो। उनका दम जैसे घुटने लगा।

उस दम-घोंटू वातावरण में उन्हें लगा, जैसे उनकी श्वासों का क्रम बन्द हो जायगा, जैसे उनका सारा शरीर शिकंजे में कसता जा रहा हो, जैसे किसी तंग कोठरी में उन्हें कोई बन्द कर दे तथा उसके दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर दे और उनका दम घुटने लगे, कुछ इसी तरह की

घुटन मुंशी जी को महसूस हुई। उन्हें लगा कि अगर कुछ देर वहाँ और बैठे तो वह पागल हो जायेंगे। उनके श्वासों का क्रम बन्द हो जायगा।

हड़बड़ा कर वे उठे। अपनी नतिनी को उन्होंने गोद से उतार दिया और जैसे बिना सोचे समझे ही, एक आदतवश उनके पांव सिवान की ओर उठ गये।

मुंशी जयकिशनलाल के कदम उनके खेत के सामने रुक गये। बिना जोते हुए खेत सूख कर कड़े हो गये थे। उनमें जगह-जगह घास उग आयी थी। जगह-जगह उसमें केंचुए के बिल बने हुए थे। उनके ऊपर की मिट्टी भी सूख कर कड़ी हो गयी थी, केंचुए के बिल से निकली हुई मिट्टी की लकीरें मालूम होती थीं जैसे सन की रस्सी में किसी ने गांठें बांध रखी हों। मुंशीजी का दिल बैठ गया। उन्हें लगा, जैसे वह खेत नहीं, मुर्दा लाश हो। नहीं तो इन दिनों कातिक के महीने में जुते हुये खेत की मिट्टी इतनी नर्म और मुलायम हो जाती थी, जैसे नर्म मखमली गद्दे पर पाँव रख रहे हों। अगर पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा पूरी ऊँचाई से छोड़ दिया जाय तो उस पर जरा भी रेप न आये; पर आज तो जैसे पत्थर की तरह कड़े हों।

मंशीजी को ख्याल आया, खेत में फसल बोने का समय हो गया है। अब तक तो वह भीड़ रहती थी कि जरा सा भी दम मारने की फुरसत नहीं मिलती। उतरते कातिक में तो कहीं-कहीं खेतों में जौ, गेहूं और मटर अंगुल दो अंगुल उग आयी होती, वे ऐसे भले मालूम होते थे जैसे

मानो किसी नयी दुलहन का हरा दुपट्टा हो।

मुंशीजी के ईख और अरहर के खेत हरे भरे थे, फिर भी उनकी बिना देखभाल के कारण कहीं उसे सांड़ और भैंसे चर रहे थे, एकदम लावारिस खेत की तरह। जैसे बिना मां का बच्चा हो और कड़े स्वभाव वाली विमाता के निरंकुश शासन में पड़ कर अपनी स्वाभाविक बाढ़ को खो चुका हो, उसका स्वाभाविक विकास रुक गया हो और वह जैसे अपने बीते दिनों को याद करके विसूर रहा हो।

वहां पर मुंशी जयकिशन से रुका नहीं गया। अपने खेतों की यह बरबादी उनसे देखी नहीं गयी, अनजाने ही वह वहां से चल पड़े और अपने धान के खेतों के पास पहुंच गये। उनका अन्तर्मन जैसे उन्हें उधर खींचे ले जा रहा हो।

धान के जो खेत खलार के थे, उनकी जड़ों में अभी कुछ नमी थी। बालें फूट चुकी थीं, तथा दाना में दूध आ गया था। उम्मीद थी कि इतनी ही तरी से दाने प्रौढ़ हो जायेंगे, किन्तु खेत में घासें उगी हुई थीं। मजदूरों-बनिहारों के अभाव में उनकी सोहनी नहीं हो पायी थी, इसलिये लेड़ई, करेम, सांई, कटसरैया आदि उगी हुई थीं। लेड़ई की हरी-हरी और सीक सी पतली पातें बड़ी सुन्दर मालूम होती थीं। हरियाली के साथ सोने सा कुछ पीलापन लिये धान के खेतों में वह हरी-हरी लेड़ई बड़ी खुशहाल मालूम हो रही थी। करेम के हरे हरे पत्ते पान के पत्ते की तरह फैले हुये थे, पर करेम वहीं पर था जहां थोड़ा-बहुत पानी था। हरे पत्तों के बीच, धतूरे के छोटे फूल की तरह करेम के

कोमल फूल थे, सफेद चादर के बीच से गुलाबी रंग, और उसका जीरा ; लगता था जैसे करेम के पौधे फलों की माला पहने शृंगार किये हों। कटसरैया के फूल झड़ चुके थे और उनके छोटे-छोटे फल लटके हुये थे। कच्ची दूधिया बाली हवा के वेग मे लहरा लहरा उठती थी।

किन्तु जो खेत उंचाई पर थे, उनके पौधे सूख रहे थे। खेत में जगह-जगह दरारें पड़ गयी थीं। धान के पौधों में बालें फूटी नहीं थीं, या कहीं कहीं कुछ बालें फूटी हुई भी थीं, तो वे इतना कमजोर और फीकी मालूम होती थीं, जैसे सतवांसे बच्चे, जो अपनी पूरी बाढ़ पर न आ पाये हों। धान के पौधे पीले पड़ कर मुरझा गये थे। उनके ऊपर के पत्तों में तो कुछ हरापन मौजूद था, किन्तु जड़ों के पास के पत्ते तो पीले पड़कर मुरझा गये थे। और इधर-उधर लटक रहे थे। मानो कमजोर बच्चे की लकवे से ग्रसित बाहें हों जो निर्जीव होकर लटकी हुई हों। धान के सूखे पौधे पर कहीं-कहीं करेम की बंवर लिपटी हुई थी, जैसे अपने साथी के दुख से दुखी उसके गले से मिलकर उससे सान्त्वना बंधा रही हो। जेठ में जैसे प्यासी चिड़िया चोंच खोले पानी की आशा में इधर-उधर दौड़ती फिरती है, और अपनी प्यास न बुझा पाकर किसी जगह बैठ कर हांफने लगती है। सूखे हुए पौधे कुछ इसी तरह मालूम हो रहे थे। उंचास के खेतों में तो हर साल ही नीचे के बहावों से दोन-दौरी से पानी उलीच कर सींचना पड़ता है पर इस साल तो जब से बनिहारों ने मुँशी जयकिशनलाल और उनके साथियों का बायकाट किया, तब से बात ही दूसरी थी। कौन उनकी सोहनी करता, कौन उनमें

समय पर पानी देता।

सूखते खेतों की मेंड़ पर खड़े मुंशीजी एकटक धान के पीले मुरझाये पौधों की ओर सूनी-सूनी आँखों से देखते रहें, जैसे कोई दम तोड़ते अपने बच्चे की ओर निरीह आंखों से देखता है। उनके मन में रह-रह कर विचार उठने लगे—"क्या से क्या हो गया।" उनके अन्तर्मन ने जैसे स्वीकार किया कि उन नाचीज कमीनों, बनिहारों, मजदूरों के मुकाबिले में मेरी हार हो रही है। मुझे अपनी कूटनीति का विश्वास था, अपनी जाति के बड़प्पन का गरूर था, अपने दोस्त, मित्रों और शुभचिन्तकों तथा हाकिम-हुक्कामों के सहयोग का गरूर था, अपने सरीखे दो-चार मातबर लोगों का भरोसा था, किन्तु आज जैसे सब निरर्थक हो गया है, जैसे सब बेकार हो गया हो, और जैसे आज सभी को एक साथ इन बनिहारों-मजदूरों ने पराजित कर दिया हो। हम लोगों का सारा बड़प्पन, सारी अकल, सारा गरूर जैसे उनकी चपेट में आकर चकनाचूर हो गया हो। आज जैसे उन्हें स्पष्ट महसूस हो रहा हो कि हाथ से मेहनत करने वालों की ताकत सर्वोपरि है। उन्हीं के परिश्रम के बल से हम लोगों में बड़प्पन आया था, और जिस दिन उनका सहयोग हमें नहीं मिल सकेगा, उस दिन हम लोग हवा निकले बेलून की तरह निःसत्व हैं। उनको तभी तक दबा कर रखा जा सकता है, जब तक उन्हें अपनी ताकत का ज्ञान न हो। अब, जब कि वे अपनी शक्ति को महसूस करके जागृत हो गये हैं, उन्हें दबा कर रखने की शक्ति इस धरती पर किसी में नहीं है।

उन्हें जैसे कटु अनुभव हो रहा हो कि वे हारते जा रहे हैं, हारते ही नहीं, मैदान छोड़ कर भाग रहे हों, और उनके पीछे मजदूरों, बनिहारों आदि तमाम मेहनतकश लोगों की सेना विजय पर विजय करती चली आ रही है। और अब उस अजेय कालवाहिनी के सामने आत्म-समर्पण करना ही पड़ेगा !

मुंशीजी जैसे कोई भयानक दुःस्वप्न से चौंक उठे हों, जैसे वे सोचने-समझने की स्थिति से परे हो चुके हों। कुछ देर तक वह इसी रूप में हतप्रभ और पराजित सैनिक से खड़े रहे, फिर अनमने होकर आगे बढ़ गये। मानों अपने किसी अत्यन्त प्रिय सम्बन्धी का शव दाह करके वापस लौट रहे हों।

रास्ते में लछिमन सिंह का खेत था, दयाशंकर दूबे का खेत था, दलथंभन चौधरी का खेत था, सब खेतों की वही हालत थी, जो इनके खेत की थी। सभी खेत सूखे मुरझाये थे। कुछ दूर आगे बढ़े तो देखा, जोरावर सिंह अपने सूखे धानों को हंसिया से काट रहे हैं। मुंशी जी रुक गये। उनको देखकर जोरावर सिंह ने धान काटना बन्द कर दिया और बोले—

"सोचा था कि इस साल धान की फसल बहुत अच्छी है, और शुरू शुरू में उनकी बाढ़ भी ऐसी ही थी, लगता था कि बिस्सा मन से कम नहीं जायगा। किन्तु अब आज मुआर[1] काटना पड़ रहा है।"

यह कह कर उन्होंने एक निःश्वास ली जैसे अपने सर्वस्व की बाजी

१—सूखा पौधा।

हार गये हों।

मुँशी जयकिशनलाल ने कोई जवाब नहीं दिया, किन्तु उन्हें यह महसूस हुआ कि जोरावर सिंह उन्हें दोष दे रहे हों—"यह सब विष बीज तुम्हारा ही बोया हुआ है !"

जयकिशनलाल ने केवल 'हूँ' भर कहा। और मन मारे घर की ओर चल पड़े ; किन्तु उनके अन्तर्मन में जैसे कोई पूरी ताकत से चिल्ला रहा हो—"तुम हार गये ! तुम हार गये ! बनिहारों-मजदूरों के मुकाबिले तुम हार गये !!!"

卐

१४

कई दिनों के बाद आकाश खुला था। इस बेमौसम की बारिश से लोग और भी ऊब चुके थे। अभी तीन-चार दिनों तक जो बादल छाये थे, रह रह कर जो वर्षा हो जाती थी, उससे, उमस से वातावरण भर गया था। इतने दिनों के बाद जो सूरज निकला तो लगा जैसे विश्राम करने के कारण उसमें और भी ताजगी आ गयी है। उसका रूप और भी निखर गया है, उसकी चमक और भी बढ़ गयी है। सूरज की किरणें जैसे इतने दिनों तक जो बादल के परदे में छिपी थीं, फिर इतने दिनों की जुदाई के बाद जैसे धरती की हर एक चीज से उनका मोह और भी बढ़ गया हो। जैसे दूर - दराज, परदेश से आने के बाद परदेशी की आसक्ति, उसका मोह, उसका स्नेह, घर के हर एक प्राणी से, हर एक चीज से, यहां तक कि वहां के पशु-पक्षी के प्रति भी बढ़ जाती है।

उसके प्रति आत्मा का चरम स्नेह उमड़ पड़ता है। उसी तरह धरती से इतने दिनों तक विछोह सहने के बाद, सूर्य का स्नेह जैसे और भी बढ़ गया हो और जैसे वह हर एक चीज से, कण-कण से मिल कर, उसका हाल-चाल पूछ लेना चाहता हो, उसका कुशल-समाचार ले लेना चाहता हो, उसकी किरणें ताल तलैया के पानी पर नाच रही थी, हवा से हलकी उठती हुई लहरें, जैसे उन किरणों को दुलरा रही थी, ईख और अरहर पर, खलार के धान के लहराते खेतों पर, सद्यः-स्नात पेड़ों के हरे-हरे पत्तों पर, सब कहीं सूरज की किरणें जैसे लिपटी हों, जैसे उनके गले मिल कर पूछ रही हों—"कहो, आराम से तो रहे !"

रूपा के घर इस समय कुछ नौजवानों की टोली जुड़ी हुई थी। वस्तुतः अभी कल जो उन लोगों की जीत हुई थी, उसके बारे में आपस में एक साथ मिल कर उन्हें समझने-बूझने का मौका ही नही मिला था। उनमें से हर एक को इस बात का ताज्जुब था कि हमारे एके में, हमारे संगठन में इतनी शक्ति छिपी हुई है और उस शक्ति को न पहचान कर हम इतने दिनों तक पददलित थे, इतने दिनों तक मारे मारे फिरते थे! सभी तो हमें रौंद रहे थे, हालांकि हमारे ही बल पर, हमारी ही बाजुओं की ताकत के भरोसे पर हमारे रौंदने वाले पनप रहे थे।

चेखुर ने गोपी को लक्ष्य करके कहा—

"गोपी भइया, हमलोगों को अगर पहले ही पता चल गया होता कि हमारी एका की ताकत में वह सिद्धि छिपी है, तो आज तक हम लोग इस धरती पर सरग कायम कर दिये होते। क्यों ?"

गोपी -- "खैर, जब से हम जग गये, तभी से समझो कि हमारा नया जनम हुआ है, पर एक बात कहूंगा। हम लोगों को अपनी इस जीत को स्थायी बनाना होगा। हम लोग अपनी सामाजिक स्थिति सुधारें, अपनी खामियों को पहचानें और उसको दूर करने की कोशिश करें, तथा सबसे बड़ी बात कि मेहनत के बल को पहचानें। जब तक हम लोगों के हाथों में मेहनत करने की ताकत बनी हुई है, तब तक हम लोगों का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

परताप—"और तभी तो उसकी ताकत के बल से कल जयकिशन-लाल को मुँह की खानी पड़ी है। अगर हम लोगों के एके का अहसास उन लोगों को नहीं होता तो क्या कल हम लोगों की जीत होती।"

गोपी —"इस दो महीने में उन्हें आटे दाल का भाव मालूम हो गया है। उन्हीं को क्या, उनके जितने दोस्त-मित्र थे, सबने अच्छा सबक सीख लिया। भदई फसल पूरी उतरी नहीं और अब चैती फसल भी पूरी होगी नहीं, क्योंकि खेत के जोतने वगैरह का समय तो बीत ही चुका है। अभी तक उन लोगों को इसका पता ही नहीं चलता था कि उनका घर अनाज से किसके परिश्रम से भर जाता है! जेठ की चिलचिलाती धूप में, हम अपना तन सुखा डालते थे, सावन-भादों की अँधियारी में, पूस-माघ के हाड़ फोड़ जाड़े में हम काम पर लगे रहते थे। मिट्टी के साथ अपना तन एक कर देते थे, फिर भी क्या पाते थे। कभी सुअन्न की बन्नी नहीं मिली। कभी सीधे मुँह हमसे किसी ने बात नहीं की। कभी हमारी कोई गिनती नहीं की! हमारे साथ पशुओं से भी बदतर

व्यवहार किया जाता था। अपने गाय-बैल-भैंसों को तो वे सँभार करते थे, पर हमें दिन भर की मजदूरी में दो सेर अनाज दे कर समझते थे कि जैसे अहसान का बोझ लाद दिया। किन्तु इस दो महीने में उन्हें मालूम हो गया कि नहीं, सारा बड़प्पन तभी तक कायम रह सकता है, जब तक हमारे परिश्रम के फल का उपयोग वे करते रहें। किन्तु अब उन सबको यह अच्छी तरह पता चल गया है कि अब हम वह नहीं रहे। जो अपनी मेहनत लुटायें और ऊपर से मार भी खायें। अब तो उन्हें यह मालूम हो गया कि हमारी ही मेहनत है, जिसके बल से उनके मुँह पर रौनक हैं, हमारे ही पसीने की बूँदें हैं जो उनके बदन पर लाली बन कर चमक रही हैं और इस धरती के असली मालिक हमीं हैं मेहनत करने वाले।"

यह कहते कहते गोपी जैसे कुछ आवेश में आ गया हो। बोला—

"जब हम लोगों ने अपनी ताकत को पहचान लिया तो फिर हमारा अपमान करने वाला कोई नहीं रह गया। यह धरती हमारी है!"

रूपा—"और नहीं तो क्या, चौधरी दलथंभन इतनी आसानी से हार मान बैठना कि आयन्दा से वह शादी-व्याह के मामले में अड़ंगा नहीं लगायेगा। वह तभी तक चौधरी बना रह सकता है जब तक कि वह हमारी उन्नति की भावना रखे, हमारी स्थिति को सुधारने की कोशिश करे, नहीं तो अगर हमारा ही गला काट कर, वह अपना भला करने की सोचे तो एक दिन भी वह नहीं टिक सकता और इस बात को उसने बखूबी महसूस किया है"।

चेखुर—'कल जयकिशनलाल का तो मुँह देखने ही के काबिल था। सुगनी से माफी माँगते समय कैसा मुँह हो रहा था उसका !"

गोपी—"हाँ, माफी माँगने की हीनता तो वह महसूस कर ही रहे थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनके सामने हम लोगों की जो शर्तें थीं, वही उनकी जान को आफत में डाले हुए थी—'हमारे साथ सामाजिक व्यवहार की समानता, और काम करने वाले हलवाहों, चरवाहों, बनिहारों, मजदूरिनों आदि की मजदूरी में समुचित वृद्धि। एक बात हम लोगों को यह समझ लेनी चाहिए कि यह जीत केवल अकेले हमीं लोगों के बल से नहीं हुई है। उन लोगों के सामने यह दिन की तरह प्रकट हो गया कि वे अकेले हैं और सारे काम करने वाले मेहनतकश आदमी हमारे साथ हैं ! नाई, धोबी, लुहार, कुम्हार आदि सभी। और हम लोगों की सामूहिक ताकत के बल से ही झुके हैं, नहीं तो अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।"

अमिरती—"किन्तु जो सबसे बड़ी बात हुई वह यह है कि हम सभी गरीबों की समझ में यह आ गया कि हमारी एक ही जात है और वह है मेहनत करने वालों की जात। और उन लोगों को भी मालूम हो गया कि अब मेहनतकश लोगों को दबा कर रखने का जमाना लद गया।"

तब तक वहां दो-चार आदमी और आ गये। उनमें एक था गाँव का नाई और दूसरा लुहार। आते ही जुम्मन नाई ने मुस्कराते हुए कहा—

"आज तो बड़ी रंगत मालूम हो रही है !"—

और जैसे विजय की भावना से वह और भी मुसकरा उठा।

रूपा ने कहा—"रंगत क्या, आज हम लोगों की बिरादरी बढ़ गई है। आज हम सभी छोटी जातियों का भेदभाव मिट गया और सब मेहनत करने वाले मिल कर एक बड़ी जात हो गये। फिर आज भी रंगत नहीं रहेगी तो किस खुशी के दिन रहेगी?"

रोपन लुहार ने कहा—"यह भी क्यों नहीं कहते कि कल जो मुंशी जयकिशन लाल और उनके लग्गू-भग्गू लोगों को पछाड़ा है, उसकी भी खुशी है। पर भाई, इस सूखे तमाखू से ही काम नहीं चलेगा, कुछ और परबन्ध हो जाय।"

दो एक आदमियों ने एक साथ उल्लासपूर्वक कहा—

"रूपा और सुगनी की तरफ से दावत हो जाय। अभी नई-नई शादी है। क्यों?"—

और एक दूसरे को ओर अर्थ-पूर्ण नजरों से देख कर ओठों में ही मुसकराने लगे।

सुगनी एक तरह से अभी तक चुपचाप एक तरफ बैठी थी। अब मुसकरा कर बोली—

"दावत ही खानी है तो उसका परबन्ध हो जाता है। यह तो सब लोग मानते ही हैं कि यह हालत लाने में गोपी देवर का सबसे बड़ा हाथ है और मैं समझती हूं कि इसका पुरस्कार इन्हें मिल जाना चाहिए। और फिर दावत भी इन्हीं से वसूल करनी चाहिये।"

उसकी मुसकराहट की कुटिलता और भी बढ़ गई।

वातावरण में जैसे और भी सरसता फैल गई। सभी ने एक स्वर में कहा—

"तो कोई इनाम तजवीज कर रखा है क्या?"

सुगनी—"इनाम क्या, अरे इनकी दिली मुराद पूरी हो जाय, वही सबसे बड़ा इनाम है इनके लिए।"

उसके ओठों पर मुसकराहट अब भी खेल रही थी।

रूपा ने जैसे सुगनी की बात का रहस्य समझ लिया हो। अपने ओठों के कोरों पर वह मुसकरा उठा। बोला—

"तो खोल कर कहो न गोपी की ख्वाहिश।"

गोपी की मुख-मुद्रा अभी तक गंभीर थी, जैसे युद्ध में जीत पा जाने के बाद अपनी गुरुता से सेनापति की मुखाकृति कुछ क्षण के लिए अत्यन्त गंभीर हो जाती है। पर सुगनी की बात सुन कर वह मुसकरा उठा। जैसे उसे भी कुछ आभास हो कि सुगनी क्या कहेगी। चुपचाप मुसकराता रहा।

सुगनी ने गोपी की ओर देख कर मुसकराते हुए कहा—

"तो देवर, खोल कर कहूँ! पर तुम्हारी मन की मुराद पूरी हो जायेगी तो क्या इनाम दोगे मुझे, बोलो?"

गोपी ने रस लेते हुए कहा—

"जो कहोगी, वह दूँगा। मैं तो तुम्हारे सामने सदा ही हारा हुआ हूँ!"

फिर जैसे सुगनी के व्यंग का जोड़ का तोड़ उत्तर देने के लिहाज

से बोला—

"और कोई इनाम पसन्द न आये तो मुझे ही इनाम में माँग कर देख लो। सौ जान से हाजिर रहूँगा।"

उपस्थित सभी लोग ठठा कर हँस पड़े।

सुगनी के गालों पर लज्जा की लाली दौड़ गई। इस तीखे मजाक से क्षण भर के लिए वह झेंप गई। फिर बोली—

"तो भाई, मैं सबसे कहती हूँ, मुझे एक देवरानी की जरूरत है। और वह मैंने तजवीज कर रखी है। कहीं खोजने नहीं जाना पड़ेगा।"

सबने उत्साह पूर्वक एक साथ कहा—

"कौन है वह?"

सुगनी—"इतना ही नहीं जानते तुम लोग। वहाँ देवर और हमारी होने वाली देवरानी में वादे भी हो चुके, एक दूसरे के साथ सारी जिन्दगी गुजारने के इकरारनामे भी हो चुके, और यहां किसी को कानों-कान खबर तक नहीं लगने पाई। पर मैं तो उड़ती चिड़िया पहचानती हूँ। फिर भला अपने देवर के दिल का हाल नहीं जान सकूँगी!"

यह कह कर गोपी की ओर रहस्यपूर्ण नजरों से उसने देखा। रूपा ने फिर आतुरता पूर्वक कहा—

"कुछ बताओगी भी कि पहेली ही बुझाती रहोगी!"

सुगनी ने एक क्षण तक गोपी की ओर देखा। वह मुसकरा रहा था। फिर अमिरती की ओर देखा। अमिरती के कपोलों पर जैसे नव-वधू की लज्जा की लालिमा फैल रही हो। बोली—

"तो सुनो, वह है अमिरती।"

"अमिरती !"

सबने एक स्वर से दुहराया। जैसे ऐसा मनोवांछित संदेश जीवन में कभी-कभार ही सुनने का मौका मिलता हो। सभी का मन उल्लास से भर उठा।

"पर अब देर नहीं होनी चाहिये। जल्दी ही इनकी शादी का बन्दोबस्त हो जाना चाहिये।" सुगनी ने आगे कहा।

गोपी और अमिरती दोनों सर झुकाये मुसकराते रहे।

परताप—"भौजी, शादी जब होगी, तब होगी। पहले तुम गोपी भैया की शादी का गीत तो गा दो।"

"हाँ, हाँ, गाओ, पहले शादी का गीत हो जाय, फिर दो-चार दिनों में शादी और फिर दावत—।" एक ने कहा।

जुम्मन ने मुसकराते हुए कहा—"हाँ, गीत तुम गाओ और बाजा मैं बजा देता हूँ।"

यह कह कर वह आँगन में पड़ी कांसे की थाली उठा लाया और लकड़ी से टुनटुनाने लगा।

सुगनी मुसकराती हुई उल्लसित हो कर उठी। गोपी के पास जा कर खड़ी हो गई। उसकी आँखों में शरारत नाच रही थी। उसके ओठों पर मुसकराहट खेल रही थी। बोली—

"देवर, बोलो तुम्हारी शादी का गीत गाती हूँ। किन्तु न्योछावर यहीं लूँगी। नेग-जोग में उधार की बात नहीं चलती। हां, समझ लो

अभी से।"

परताप—"तुम गाओ तो, नेग दिलाने का जिम्मा हमारा रहा।"

सुगनी ने अपने हाथ से गोपी की ठुड्ढी पकड़ कर कुछ ऊपर उठा दिया और मधुर स्वर में गाया—

"आज सुहाग की रात चँदा तुम उगियो,
अँगना में उगियो, मँड़वा में उगियो,
आज सुहाग की रात चँदा तुम उगियो।
दुलहा पै उगियो, दुलही पै उगियो,
आज सुहाग की रात, चँदा तुम उगियो,
आज सुहाग की रात चँदा तुम उगियो।
आज सुहाग···· ·······························॥"

उनके हृदय का उल्लास जैसे हँसी की खिलखिलाहट में गूँज उठा।

और उस प्रवाह में जैसे उपस्थित व्यक्तियों का उल्लास मिल कर एकाकार हो गया।

卐